संघशक्ति

4 सितम्बर, 2017

वर्ष : 54 अंक-09

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/ रुपये, वार्षिक : 150 रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये , दस वर्षीय : 1300 /- रुपये

विषय - सूची

समाचार संक्षेप		04
चलता रहे मेरा संघ	श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	श्री चैनसिंह बैठवास	06
उपासना	स्वामी श्री यतीश्वरानन्द	08
क्षत्रियत्व की प्रतिमूर्ति : दुर्गादास राठौड़	श्री रेवंतसिंह पाटोदा	11
रंग है रवाभा को	स्वामी श्री सच्चिदानन्द	13
क्रियात्मक पथ का मार्गदर्शक साहित्य	श्री कृपाकांक्षी	15
मैं उसको ढूँढ रहा हूँ-6	श्री महेन्द्रसिंह गूजरावास	16
मा कर्मफलहेतुर्भूः	श्री सुदर्शनसिंह 'चक्र'	17
विचार-सरिता (त्रयोविंश लहरी)	श्री विचारक	20
प्रताप महान	फारूक अहमद खान	22
गुजरात में सोलंकी कुल का शासन	श्री गिरधारीसिंह डोभाड़ा	25
मणिपुरी क्षत्रिय	कर्नल श्री हिम्मतसिंह पीह	27
भक्त शिरोमणि मीरा बाई	श्री ब्रजराजसिंह राजावत खरेड़ा	28
अपनी बात		30

समाचार संक्षेप

पू. नारायणसिंहजी की जयन्ती :

पू. नारायणसिंहजी का जीवन हर स्वयंसेवक के लिये प्रेरणादायी है। वे हमारी ही तरह एक साधारण व्यक्ति थे। साधारण परिवार, साधारण घरेलू परिस्थितियाँ, साधारण शिक्षा लेकिन अपने साहसिक निर्णयों तथा उनकी पालना से वे असाधारण बन गए। संघ प्रवेश के प्रारम्भिक काल से ही संघ कार्य के लिये उनके दिल में छटपटाहट रहती थी। दसवीं कक्षा के पश्चात अध्यापक की नौकरी कर ली। परन्तु जहाँ पद स्थापन हुआ वहाँ संघ कार्य की किसी भी प्रकार की संभावना न थी अत: छटपटाहट और बढ़ गई। इसी छटपटाहट में उन्होंने निर्णय लिया कि मेरे जीवन को कोई सार्थकता प्रदान कर सकता है तो वह है पू. तनसिंहजी का सान्निध्य। उन्होंने अपनी सरकारी नौकरी छोड़ दी और पू. तनसिंहजी के साथ हो गए। अमृत तुल्य सान्निध्य मिला तो संघ कार्य में ही निमग्न बने रहने का अवसर भी।

पूज्य तनसिंहजी के साथ रहना आसान नहीं था। वे अपने साथियों को मांजते थे ताकि उनके जीवन में निखार आए। मांजना या जीवन को निखार देना आसान नहीं होता, कष्टकर भी होता है। इसलिए पूज्यश्री के साथ लम्बे समय तक विरले ही टिके रह सकते थे। नारायणसिंहजी के जीवन में आए निखार ने उनको संघ का आदर्श स्वयंसेवक बना दिया। संघ कार्य के प्रति छटपटाहट को भी राह मिली और ऐसे कार्य में जुटे कि 4-4 माह तक लगातार संघ कार्य में ही व्यस्त रहते। शिविर, शाखा भ्रमण, जयन्ती कार्यक्रम, स्नेह मिलन आदि कार्यक्रमों में बिना विश्राम लगातार लगे रहने के साथ-साथ संघ शिक्षण को रोचकता प्रदान करने के लिये भी सक्रिय रहे। वे संघशक्ति के सम्पादक भी रहे और बीस वर्ष तक संघ के संघप्रमुख भी रहे। संघ में पारिवारिक भाव विकसित कर उन्होंने स्वयंसेवकों में परस्पर घनिष्ठता को दृढ़ता प्रदान की। उनकी संघ को देन के प्रति कृतज्ञ स्वयंसेवकों ने उनकी 77वीं जयन्ती (78वाँ जन्मदिवस) 30 जुलाई को संघ की शाखाओं में सर्वत्र मनाई। जयपुर में प्रतिवर्ष की तरह जयन्ती कार्यक्रम में पारिवारिक सहभोज का भी आयोजन हुआ और संघप्रमुखश्री का सान्निध्य भी प्राप्त हुआ।

नागौर, सांचोर, थापण (सिवाना), कल्याणपुर, डेलासर, पोकरण, बर, पांचोटा, मोहनगढ, सुजानगढ, गुड़ा कलां (सोजत), उदयपुर, आहोर, उथमण (सिरोही), सीहड़ों की ढाणी सेवनियाला, नौसर, उण्डखा, जोधपुर, कुचामन, दानजी की होदी (बाड़मेर), मल्लीनाथ छात्रावास, जालोर शहर, सायला, प्रेम चौक पार्क दिल्ली, पुणे (महाराष्ट्र), भायंदर व एरोली (मुंबई), खोडियार मंदिर (भावनगर), खरड़, सांढिड़ा, सुरेन्द्रनगर, धोलेरा, काणेटी, बल्लभीपुर शिविर में व अनेक शाखाओं में जयन्ती कार्यक्रम मनाए जाने के समाचार हैं।

दुर्गादास जयन्ती :

मध्यकालीन भारत में दुर्गादास राठौड़ जैसा आदर्श क्षत्रिय दूसरा नहीं। क्षत्रिय के सातों गुणों से जिसका जीवन ओतप्रोत हो, ऐसे थे वीर दुर्गादास राठौड़। उनको अपने जीवन में अनेक सम्मुख व छापामार युद्ध लड़ने पड़े और प्रत्येक युद्ध में उन्होंने अद्भुत रणकौशल का परिचय दिया। ऐसा था उनका तेज कि उनके नाम से ही शत्रु के दिल में दहशत पैदा होती थी। कर्तव्य बोध के वे ऐसे धनी थे कि ओढे गए उत्तरदायित्व के लिये ही जीवन लगा दिया। कूटनीति में भी उस युग में कोई दूसरा नहीं हुआ। जो शत्रु फूट डालकर हमारी शक्ति को क्षीण करने वाला था, उसके घर में ही दुर्गादासजी ने सेंध मार दी और बादशाह के पुत्र को अपनी ओर मिला लिया। उनको अनेक प्रलोभन मिले पर वे कभी डिगे नहीं। जिसको साथ में मिला लिया उसकी पूरी सुरक्षा की। बादशाह के पौत्र और पौत्री को सुरक्षित ही नहीं रखा, उनकी धार्मिक शिक्षा के लिये भी व्यवस्था की और स्त्री जाति के लिये सदैव सम्मान का भाव सर्वोपरि रखा। बादशाह के विरुद्ध देशी ताकतों को एक करने की सोच उस समय थी ही

(शेष पृष्ठ 12 पर)

चलता रहे मेरा संघ

(श्री क्षत्रिय युवक संघ के दंपती शिविर ऋषिकेश में दिनांक 4.3.2010 को संघप्रमुखश्री भगवानसिंहजी का स्वागत उद्‌बोधन)

विभिन्न स्थानों की यात्रा अथवा विभिन्न प्रदेशों की यात्रा देशाटन कहलाती है। देशाटन का अपना महत्त्व है। देशाटन से अनेक जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। जहाँ की यात्रा की जाती है, वहाँ की जलवायु, वहाँ के लोगों का रहन-सहन, उनके रीति-रिवाज, उनकी भाषा, वहाँ के लोगों का व्यवहार, वहाँ के दर्शनीय स्थल आदि अनेक प्रकार की जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। ये जानकारियाँ तथा यात्रा अवधि की सुविधाएँ, दुविधाएँ हमारे अनुभव में जुड़ती हैं। तीर्थ स्थल की यात्रा को तीर्थाटन कहा जाता है। तीर्थाटन में देशाटन से प्राप्त होने वाले अनुभव तो प्राप्त होते ही हैं, साथ ही पवित्रता भी आती है। तीर्थ वे स्थान हैं जो किसी की तपस्या से, साधना से जुड़े हैं। ऐसे स्थानों पर छोटी-मोटी तपस्या आदि होती ही रहती है इसलिये वे स्थान पवित्र होते हैं और यहाँ की यात्रा अर्थात तीर्थाटन से पवित्रता भी आती है। हम यहाँ श्री क्षत्रिय युवक संघ के दंपती शिविर में आए हैं। तीर्थाटन के लाभ के साथ क्षत्रिय युवक संघ के शिविर का लाभ हमें अतिरिक्त मिलेगा। यह लाभ लेने के लिये हमें बताए गये नियमों का पालन करना होगा। बताए गये नियमों का पालन करना अनुशासन है। इस पवित्र स्थान पर पालित अनुशासन ईश्वरीय अनुशासन बन जाता है।

भिन्न-भिन्न स्थानों से, भिन्न-भिन्न आयु वर्ग के, भिन्न-भिन्न शिक्षा वाले, भिन्न-भिन्न मानसिकता लिये, पर कुछ एकता लिये हुए हम लोग ऋषिकेश के इस गीता भवन में एकत्रित हुए हैं। हमारी जो भी भिन्नता है, दिखाई दे रही है वह भगवान की ही दी हुई है। परन्तु जो एकता है, जो समानता है, वह भी भगवान की ही देन है। ऐसा ही शास्त्रों में पढा है और संत जनों से सुना है। जो इस सृष्टि की संचालन शक्ति के अस्तित्व में भरोसा करते हैं वे आस्तिक हैं। भारत के आस्तिक इस भिन्नता और समानता को भी मानते हैं।

सब ईश्वर की संतान हैं। जड़-चेतन सभी तो उसी के सृष्ट हैं। और सभी, सारा संसार ही जो ईश्वर का ही अंश है, अपने अंशी भगवान की ओर बढ रहा है। अपने अंशी से संयुक्त होना ही सभी का उद्देश्य है। गति सबकी भिन्न-भिन्न है, पर उद्देश्य में समानता है। प्राणियों की चौरासी लाख योनियाँ मानी जाती हैं। इन चौरासी लाख योनियों का श्रेष्ठ स्वरूप मनुष्य योनि है। मनुष्य योनि श्रेष्ठ स्वरूप होते हुए भी सभी सुखी नहीं हैं। मनुष्य सुखी भी रहता है तो दुखी भी रहता है। जब सुखी है तो कोई पीड़ा नहीं और उस सुख का कोई महत्त्व भी नहीं समझता परन्तु जब दुखी होता है तो भगवान को ही कोसता है। ये सुख और ये दुख सब हमारे ही कर्मों के फल हैं। भगवान को कोसने से ये नहीं मिटते। जब कर्मों पर ही निर्भर है तो अच्छे कर्म करते रहें तो परिणाम भी अच्छा आएगा, सुख प्राप्त होगा। यह प्रेरणा है, अच्छे कर्मों में ही प्रवृत होने की।

मनुष्य के अतिरिक्त अन्य योनियाँ भोग योनियाँ हैं। अन्य योनियाँ अपने अनुशासन से ही रहती हैं। यह उनकी विशेषता नहीं है, यह उनकी मजबूरी है। श्रेष्ठ योनि होते हुए भी अनुशासन में न रहने वाला मनुष्य ही है। कर्म से श्रेष्ठ बनना या नेष्ट बनना यह मनुष्य के हाथ में है पर मनुष्य प्रकृति में उलझ जाता है। प्रकृति शक्तिशाली है क्योंकि वह भी तो भगवान की है, इसलिए उलझा लेती है। इसी को माया भी कहते हैं। हम सांसारिक लोगों के लिये माया की उलझन को काटकर ऊपर उठना और भगवान को जानना आसान नहीं है। ईशोपनिषद का मंत्र है-

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुद्‌च्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाव शिष्यते।।

अर्थात् ओइम् वह पूर्ण है और यह भी पूर्ण है, क्योंकि पूर्ण से पूर्ण की ही उत्पत्ति होती है। तथा पूर्ण का पूर्णत्व लेकर पूर्ण ही बचा रहता है।

(शेष पृष्ठ 10 पर)

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

किसी जगह-स्थान का महत्त्व तब बढ जाता है, जब वह किसी की तप:स्थली रही हो, किसी महापुरुष की जन्मस्थली रही हो, किसी महापुरुष की क्रीड़ा स्थली रही हो, किसी की वहाँ तपस्या फलीभूत हुई हो, किसी को वहाँ रहते जीवन हेतु का मर्म समझ में आ गया हो, किसी को वहाँ रहते आत्म साक्षात्कार हुआ हो, किसी ने वहाँ रहते अपने जीवन की पथ-निर्देश दिशा खोज ली हो, किसी की वहाँ रहते चेतना जग गयी हो, किसी ने वहाँ रहते उस अविनाशी पद को पा लिया हो, किसी की वहाँ रहते उलझन सुलझन में तब्दील हो गयी हो, किसी के वहाँ रहते ज्ञान चक्षु खुल गये हों, किसी के जीवन की उलझी गाँठ सुलझ गयी हो।

कोई भी स्थान या जगह तभी चर्चित व प्रचलित होती है, जब उस जगह का सम्बन्ध किसी ऋषि-मुनि, सन्त-महात्मा, महर्षि, तपस्वी, शूरवीर, महानायक, महापुरुष के जीवन से जुड़ जाता है।

भारतवर्ष में ऐतिहासिक, पौराणिक, धार्मिक महत्त्व रखने वाले कई क्षेत्र पवित्र धाम और तीर्थस्थल हैं, जैसे रामेश्वरम, अयोध्या, वृन्दावन, द्वारिका, हरिद्वार, प्रयाग, गया, काशी, बद्रीनाथ, केदारनाथ, पुष्कर, नेमीशरण, गंगासागर, रामदेवरा, ऋषिकेश आदि-आदि। अनेकों ऐसे भी स्थान हैं जो प्रकट होते हुए भी अभी ज्यादा चर्चित नहीं हो पाये हैं और कई ऐसे भी स्थान हैं जो अप्रकट ही हैं। ऐसे स्थानों में एक पिलानी भी है, जिसका सम्बन्ध पूज्य श्री तनसिंहजी के जीवन से जुड़ा है।

अब देखना यह है कि किन परिस्थितियों और किन घटनाओं के घटित होने की वजह से पिलानी का नाम पूज्यश्री से जुड़ा है।

पिलानी में पढते समय युवक तनसिंह राजपूतों व अन्य समाजों के लोगों के जीवन से रूबरू हुए। खासकर राजपूत समाज के लोगों को नजदीक से देखने, सुनने व समझने का उन्हें अवसर मिला। यहाँ रहकर राजपूतों के मौजूदा हालात देखकर व उनके जीवन की दर्दभरी दास्तान को सुनकर वे व्यथित हो गये। राजपूतों के मौजूदा हालात को देखा व उनके जीवन की दर्दभरी दास्तान को सुना तो अनेकों ने, पर उनमें से पसीजा कोई नहीं, उन्हें अनुसना कर निढाल होकर बैठ गये। क्यों? क्येंकि उनमें क्षत्रियत्व का ह्रास हो चुका था। दु:खी को देखकर करुणित होने का भाव क्षत्रिय में है।

दूसरों का रक्षण व पोषण करने वाला क्षत्रिय इतना निर्बल व कमजोर! क्षत्रिय समाज की यह दशा! जबकि क्षत्रिय का आदर्श था-'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।' दुष्टोंका दलन व सज्जनों की रक्षा करने वाला क्षत्रिय स्वयं आज असहाय व संतप्त है। फलस्वरूप मानव समाज की स्थिति भयावह बन चुकी है। ऐसे हालात बनने की वजह रही स्वयंभू आदि मनु द्वारा स्थापित सामाजिक व्यवस्था का बिखरना। लोगों की स्वच्छन्दता और स्वार्थ लोलुपता के कारण सामाजिक व्यवस्था में व्यावधान पैदा होने लगा और शनै: शनै: वर्ण व्यवस्था का लोप हो गया। स्वधर्म विस्मृत वर्ण के कारण मानव समाज में अराजकता व्याप्त हो गयी। मानव समाज को अराजकता से बचाने का उत्तरदायित्व क्षत्रिय वर्ण का है, जो स्वयं तमोगुण से आक्रान्त होकर अपने उत्तरदायित्व व कर्तव्य से विमुख हो गया। पथ विचलित व धर्मच्युत होने से वह निर्बल व कमजोर पड़ गया और सारी व्यवस्था अव्यवस्था में तब्दील हो गयी।

हम पथ विचलित व धर्मच्युत होकर अपना कर्तव्य-कर्म व उत्तरदायित्व भूल गये, पर युवक तनसिंह अपने कर्तव्य-कर्म व उत्तरदायित्व के प्रति जागृत थे इसलिये संसार, राष्ट्र व समाज की पतनावस्था देख उनके दिल और दिमाग में हलचल व प्रतिक्रिया हुई। परिणामस्वरूप उनके मन में कुछ कर गुजरने की इच्छा जाग्रत हो उठी।

सन् 1944 की दीपावली की रात को जब पूरा देश दीपकों की रोशनी की जगमगाहट में खुशियों में झूम रहा था, तब पिलानी में युवक तनसिंह एकान्त में बैठकर चिंतन कर रहा था कि क्या ये दीपक अन्धेरे में डूबे हुए मेरे समाज को प्रकाशित कर सकेंगे? क्या इन दीपकों से हमारे अन्त:करण का अन्धकार दूर हो सकेगा? क्या ये दीपक सोये हुए समाज को जागृत करने में सक्षम होंगे? अगर नहीं,तो वह दीपक प्रज्वलित करूँ, जो सोये हुए समाज के हर घटक को प्रकाशमान कर दे, उनके अन्त:करण में वह व्यथा जगा दे जिससे मैं व्यथित हूँ। मेरी व्यथा सबकी व्यथा बन जाय, निष्क्रिय व कर्तव्य विमुख समाज को अपने कर्तव्य व दायित्व का भान करा दे। इसी चिंतन धारा के क्षणों में उनके हृदय की व्यथा एक सत्य संकल्प के रूप में जगी।

पिलानी में रहते पूज्य श्री तनसिंहजी के जीवन में क्या घटित हुआ, उन्हें वहाँ रहते क्या उपलब्धि प्राप्त हुई, उनके जीवन में क्या मोड़ आया, सत्य संकल्प के जगने से क्या परिणाम निकले, वह देखें सेठ बिड़ला जी को सम्बोधित करती उन्हीं की स्वयं की लेखनी से-''तुम्हारे सदावृत (शिक्षण संस्थान) में मुझे अजीबोगरीब अनुभूतियों का साक्षात्कार हुआ। वहीं रहकर मैंने अपने जीवन की पथ-निर्देश दिशा को ढूंढ़ निकाला है। तुमने हम राजपूतों के लिये एक छात्रावास की भी व्यवस्था की थी। मैंने उसी छात्रावास में रहकर भविष्य के ताने-बाने बुने। भविष्य का इतिहास जब लिखेगा कि बिखरे हुए समाज में एक महान संस्था ने संगठन का चमत्कार दिखाकर पीढियों तक की प्रेरणा का मसाला तैयार किया, तब तुम उसे परिचय दे सकते हो कि उस महान संस्था का श्री गणेश तुम्हारे सदावृत में हुआ था। यहीं पर मैंने मेरे समाज की बिखरी हुई इंटों से भव्य इमारत बनाने के स्वप्न देखे थे। मैंने वह चमत्कार वहीं देखा था कि व्यक्ति अपने जीवन से किस प्रकार व्यक्ति की जीवन धारा में मोड़ ला सकता है। वहीं रहकर मैंने अपने जीवन में बन्धुत्व का अमृत पान किया था और वहीं से वह दीपक जलना शुरू हुआ, जिसने समाज में कोटि-कोटि युग का अन्धकार भगा दिया और उसी प्रकाश पर सैकड़ों पतंगे प्राण न्योछावर करने को प्रस्तुत हुए।''

पूज्य श्री तनसिंहजी ने समाज में जिस महान संस्था की बात की, वह महान संस्था श्री क्षत्रिय युवक संघ ही है जो सन् 1944 की दीपावली की रात्रि में पिलानी में स्थित राजपूत छात्रावास में विद्याध्ययनरत युवक तनसिंहजी के चिंतन धारा के क्षणों में उनके हृदय की व्यथा से उपजा सत्य संकल्प ही है। श्री क्षत्रिय युवक संघ की रजत जयन्ती के अवसर पर प्रकाशित संघशक्ति के विशेषांक में पूज्य श्री तनसिंहजी का लिखा लेख-''सन् 1944 की दीपावली के रोज राजपूत छात्रावास पिलानी में इसकी (श्री क्ष.यु.संघ) विधिवत स्थापना की गई थी।'' श्रीकृष्ण ने स्वधर्म विमुख बने अर्जुन को गीता के माध्यम से अपना स्वधर्म समझाया था। उसी तरह पूज्य श्री ने स्वधर्म विस्मृत क्षत्रियों को इसी श्री क्षत्रिय युवक संघ के माध्यम से स्वधर्म की शिक्षा देना प्रारम्भ किया। श्री क्षत्रिय युवक संघ एक साधना पद्धति है जिस पर चलकर परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है। संघ का कार्य ईश्वरीय कार्य है। ईश्वर की माँग पर ही इसकी स्थापना की गयी। ''परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्'' ही ईश्वर की चाह है और चाह को पूरी करने में श्री क्षत्रिय युवक संघ लगा हुआ है।

आज जितना गीता का महत्त्व है, उतना ही महत्त्व श्री क्षत्रिय युवक संघ का है, पर संघ के विस्तार के साथ ये बात धीरे-धीरे समझ में आयेगी। जहाँ श्री क्षत्रिय युवक संघ का श्री गणेश हुआ, उस जगह का महत्त्व भी कभी कम नहीं आंका जा सकता। पिलानी अभी पवित्र धाम के नाम से प्रकट नहीं हो पायी है। पूज्य श्री तनसिंहजी अपने पूरे जीवन में अप्रकट ही रहे, प्रकट हुए ही नहीं। पूज्य श्री प्रकट हुये होते तो पिलानी भी प्रकट हुई होती। दोनों अभी अप्रकट ही हैं। प्रकट होने में समय लगेगा। आगे आने वाले समय में एक दिन पूज्य श्री भी प्रकट होंगे और पिलानी उन्हीं के कारण प्रकट होगी।

(क्रमश:)

गतांक से आगे

उपासना

– स्वामी श्री यतीश्वरानन्द

देह-मन्दिर :

एक उपनिषद् में कहा गया है :''देहो देवालय:'' अर्थात् हमारी यह देह भगवान का मन्दिर है। कठोपनिषद् में इस बात को बड़े सुन्दर रूपक द्वारा व्यक्त किया गया है : ''आत्मा को रथी तथा शरीर को रथ जानो।'' भगवान की अग्नि और जल आदि तत्त्वों में, पौधों और पुशओं में, अथवा मिट्टी, पत्थर और धातु की मूर्ति में पूजा करने के बदले हम परमात्मा की देहरूपी मूर्ति में, उसे सबके हृदय को प्रकाशित करने वाले परमात्मा के मन्दिर, रथ अथवा निवास स्थान के रूप में पूजा कर सकते हैं। सूक्ष्म-ब्रह्माण्ड में सर्वव्यापी परमात्मा की उपासना द्वारा, हम उसका विराट्-ब्रह्माण्ड में भी साक्षात्कार करने में समर्थ होते हैं, क्योंकि व्यष्टि, समष्टि का ही सूक्ष्म रूप है।

लेकिन यदि परमात्मसत्ता के बदले प्रतीक, रूप अथवा व्यक्तित्व अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाय, तो उपासना का सारा आध्यात्मिक मूल्य नष्ट हो जाता है। अत: अपनी पूजा और प्रार्थना से लाभ उठाने के लिये यह आवश्यक है कि हम सही मन:स्थिति तथा दृष्टिकोण का विकास करें, जिसके बिना आध्यात्मिक प्रगति सम्भव ही नहीं है। लेकिन सही दृष्टिकोण कैसे अपनाएँ? तंत्रशास्त्रों में कहा गया है कि निम्नस्तर के चिंतन को नियन्त्रित करके अपनी आध्यात्मिक सम्भावनाओं को क्रमश: अभिव्यक्त करने पर यह सम्भव है। सुषुम्ना नाड़ी में स्थित छ: यौगिक चक्र तथा मस्तिष्क में स्थित सातवें चक्र से सम्बन्धित विभिन्न स्तरीय चिंतन को सीढ़ी से संयुक्त एक भवन की विभिन्न मंजिलों के अनुरूप समझा जा सकता है। ये चक्र हमारे तथा चेतना के विभिन्न स्तरों के संपर्क-बिन्दु सदृश है।

साधना का पथ, जिसमें चेतना को एक केन्द्र से उससे उच्चतर केन्द्र में तथा अन्त में उच्चतम केन्द्र तक उठाया जा सकता है, बहुत कठिन है। लेकिन ध्यान के मार्ग का अनुसरण करने वाले प्रत्येक साधक को चेतना के केन्द्र अथवा इच्छा के केन्द्र को कम से कम हृदय-चक्र तक उठाने का प्रयत्न करना चाहिए। इस केन्द्र की अन्तराकाश से भी तुलना की जा सकती है। कुछ लोगों के लिये हृदय को, कुछ के लिये भ्रूमध्य को, चेतना का केन्द्र बनाना आसान होता है।

जो किसी प्रतीक अथवा मूर्ति की ओर आकर्षण का अनुभव नहीं करते, वे चेतना के किसी उच्चतर केन्द्र अथवा स्तर पर दिव्य ज्योति का ध्यान कर सकते हैं, जो केवल हमारे शरीर को ही नहीं, बल्कि समग्र विश्व के सभी व्यक्तियों और वस्तुओं को व्याप्त किये हुए है। जिस साधक का किसी रूप के बिना काम नहीं चल सकता, वह किसी ज्योतिर्मय रूप का ध्यान करते रहने पर अन्तत: निराकार, सर्वप्रकाशक, परमात्मज्योति के ध्यान तक पहुँच सकता है।

आत्मा, कारण शरीर से आवृत है, जो सूक्ष्म शरीर और उसके बाद स्थूल शरीर से आवृत है। ये तीनों शरीर-कारण, सूक्ष्म और स्थूल-दूषित हैं। कारण शरीर अनादि अविद्या द्वारा दूषित है। सूक्ष्म अथवा मनोमय शरीर हमारी वृत्तियों और भावनाओं द्वारा दूषित है। स्थूल और सूक्ष्म शरीर असन्तुलित अहंकार तथा उसकी स्वार्थपूर्ण वासनाओं द्वारा दूषित है। असन्तुलित अहंकार मन को रुग्ण बना देता है। रुग्ण मन इन्द्रियों को प्रभावित करता है और दोनों मिलकर देह की क्रिया को बिगाड़ देते हैं। इस बात की सत्यता आधुनिक मनोविज्ञान द्वारा प्रतिदिन प्रमाणित की जा रही है। लेकिन इस असामंजस्य का ईलाज है। स्थूल, सूक्ष्म देहों आदि को एक साथ उनके आदिकारण तक ले जाओ, जहाँ से वे उत्पन्न हुए हैं। हम इस चरम सत्य को भूल जाते हैं कि हम परमात्मा में जीते हैं और परमात्मा हम में रहता है। अपने सहित सभी वस्तुओं को परमात्मा के साथ जोड़ देना है।

हम अपने बारे में तथा हमारी इन्द्रियों की क्रियाओं के बारे में बहुत कम जानते हैं। उदाहरण के लिए, जीवन के निम्नतम स्तर पर हमारा अपनी स्थूल इन्द्रियों के साथ तादात्म्य रहता है, लेकिन आध्यात्मिक बोध के जाग्रत होने पर हमारी चेतना के उच्चतर केन्द्र बलवान होते हैं और वे निम्नतर केन्द्रों पर नियंत्रण रखने लगते हैं। चेतना के अनेक केन्द्र हैं और ध्यान द्वारा निम्नस्तरों से उच्चतर केन्द्रों पर उठकर अन्त में आत्मा, परमात्मा के साथ संयुक्त हो जाती है। इसके लिये काफी अभ्यास करना पड़ता है, लेकिन चेतना क्रमश: ऊपर की ओर उठने लगती है। नाड़ी-मार्गों को साफ रखकर इच्छाशक्ति की सहायता से चेतना के स्तर को उस समय तक उन्नत करते रहना चाहिए, जब हमें परम सत्य की एक झलक मिले और हम क्षणभर के लिये परमात्मा के साथ अभिन्नता का अनुभव करें। तब हमें ज्ञात होगा कि परमात्मा का कुछ अंश हममें भी व्याप्त है। यदि हम उस परमात्मा के सान्निध्य का हमारे अन्दर और बाहर निरन्तर अनुभव कर सकें, तो हम एक नई शक्ति से अनुप्राणित हो जाएंगे। तब हमारी जीवनपद्धति तथा सेवा में गुणगत परिवर्तन हो जाएगा। हमारा अपने तथा दूसरों के प्रति दृष्टिकोण परिवर्तित हो जाएगा।

हममें से बहुत कम लोग इस तरह केवल इच्छाशक्ति की सहायता से इस अतिचेतनावस्था को प्राप्त कर अपने अहंकार से छुटकारा पा सकते हैं अथवा इन्द्रियों का अतिक्रमण कर सकते हैं। लेकिन जप और ध्यान की सहायता से परमात्मा के अन्तर्यामित्व की अनुभूति की जा सकती है।

जप-सर्वश्रेष्ठ उपासना :

उपासना तीन प्रकार की है- कायिक, वाचिक और मानसिक, यानी बाह्यपूजा, स्तुति-प्रार्थनादि और ध्यान। इनमें से शास्त्रविधि के अनुसार कृत क्रियाकाण्ड और अनुष्ठान रूप प्रथम प्रकार की उपासना सामान्य नागरिक के जीवन से प्राय: उठ गई है। यह मुख्यत: सामाजिक जीवन के तनाव, समय की कमी तथा आधुनिक जीवन की अन्य असुविधाओं के कारण हुआ है। काल की गति का अवलोकन कर पुराणकारों ने वाचिक और मानसिक उपासनाओं को और इसमें से भी वाचिक उपासना को विशेषकर बहुत अधिक महत्व दिया है।

वाचिक उपासना का अर्थ भगवान् के एक अथवा अनेक नामों और गुणों का पाठ करना है। प्रथम को जप तथा दूसरे को स्तोत्र या कीर्तन कहते हैं, लेकिन सामान्यत: दोनों एक साथ होते हैं।

मनु का कथन है, ''मुमुक्षु जिज्ञासु जप मात्र से ही चरम लक्ष्य प्राप्त करता है।'' और महाभारत में कहा गया है कि ''जप साधनाओं में श्रेष्ठतम है।'' श्रीमद्भागवत में इस मत का पूरा समर्थन करते हुए कहा गया है : ''सत्ययुग में विष्णु के ध्यान से, त्रेता में यज्ञों द्वारा और द्वापर में परिचार्य (पूजा) द्वारा, जो फल प्राप्त होता था, वही कलियुग में हरि-कीर्तन द्वारा प्राप्त होता है।'' और इस जप और स्तुति का अर्थ भगवान के गुणों का चिंतन भी है। इसका अर्थ यह है कि साधक को भगवन्नाम के जप के साथ ही साथ, अपने इष्टदेवता के दैवीरूप अथवा भगवान के प्रेम, करुणा, बल, पवित्रता आदि सद्गुणों का भी चिंतन करना चाहिए। अधिकांश साधकों के लिये इष्ट के रूप की कल्पना करना आसान होता है।

भावना अर्थात् श्रद्धा और भक्ति के साथ इष्टदेव के रूप का चिंतन करना, अपने आप में एक उच्चतर मानसी पूजा है। जप के साथ यह वर्तमान काल में सबसे अधिक प्रचलित उपासना पद्धति है। प्रारम्भिक साधक के आध्यात्मिक जीवन में कल्पना का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। जप और भावना (कल्पना) साथ-साथ होना चाहिए। भगवद्रूप ज्योतिर्मय, आनन्दमय, जीवन्त और सत्य है, ऐसी भावना करनी चाहिए। अपनी देह को ज्योतिर्मय सोचो और तब इष्ट के ज्योतिर्मय रूप को ज्योतिर्मय हृदय-चक्र में प्रतिष्ठित करो।

ऐसी सजीव कल्पना के लिये कुछ उपाय दिए जाते हैं। उचित आसन पर बैठने के तुरन्त बाद बद्धाञ्जली हो उपासक कहे,

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थाङ्गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।

अर्थात् ''किसी भी अवस्था में, कोई पवित्र हो या अपवित्र, भगवद् चिंतन से वह बाह्याभ्यन्तर पवित्रता प्राप्त करता है।''

इस प्रकार वह अपने शरीर तथा मन में पवित्रता अनुभव करे। तब वह अनुमान करे कि व्यष्टि जीव का उत्थान शरीर के निम्न केन्द्रों से मस्तक में स्थित केन्द्र तक हुआ है, तथा वह समष्टि चेतना के तेज-पुञ्ज के साथ एकाकार हो रहा है। फिर वह कल्पना करे कि सभी पदार्थों तथा रूपों सहित स्थूल एवं सूक्ष्म, ये दोनों शरीर परमतत्त्व की ज्योति में मिल गए हैं। अब भीतर, बाहर, सर्वत्र केवल वही आलोकित है। अधिकतर लोग ज्यादा समय तक इस अवस्था में नहीं रह सकते। तत्पश्चात् उपासक अपने हृदय में चेतना-केन्द्र का अनुभव करे तथा ऐसी सजीव कल्पना करे कि उस केन्द्र में परमज्योति के सागर से उसके इष्टदेव का तेजोमय दिव्य रूप तथा सभी मलिनताओं से मुक्त, उपासक का आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत रूप भी प्रकट हो रहा है। साधक अपने सूक्ष्म आध्यात्मिक शरीर से अभिन्न समझते हुए तथा कुछ समय के लिये भगवन्नाम जपते हुए इष्टदेव की पूजा तथा ध्यान करे। वह इष्टदेव तथा अपने नये आध्यात्मिक शरीर, इन दोनों को आधार देने वाले तथा व्याप्त करने वाले निराकार को न भूले। अन्त में उपासक निम्नोक्त प्रार्थना का उच्चारण करते हुए अपना सर्वस्व भगवान को समर्पण करे :

इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्कृतं यत्स्मृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा।

अर्थात् ''प्राण बुद्धि तथा देह के आवेग के अधीन होकर जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं में मन, वचन तथा कर्म से मेरी विभिन्न इन्द्रियों द्वारा किया गया सर्वस्व, ब्रह्म को अर्पित हो।''

जप और ध्यान को समाप्त करने के बाद भी भक्त को अपनी चेतना के केन्द्र को पकड़े रहना चाहिए तथा सदा उस उच्च मनोभाव को बनाए रखने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रत्येक साधक का चेतना का एक निश्चित केन्द्र, एक निश्चित मंत्र, और ध्यान के लिये एक निर्धारित दैवी रूप, ये तीन बातें होनी चाहिए। प्रभावशाली होने के लिये जप और भावना बहुत तीव्रता के साथ किए जाने चाहिए।

लौकिक मामलों की तरह आध्यात्मिक विषयों में भी हमें अपने विचारों और क्रियाओं के बारे में पूर्णरूपेण स्पष्ट और निश्चित होना चाहिए। कुछ लोग इन कड़े नियमों और ध्यान की विधियों को पसन्द नहीं करते। प्राय: ऐसी अरुचि मानसिक अशान्ति और विद्रोह की द्योतक है। प्रारम्भ में निश्चित नियमावलि और विधि के बिना कोई भी आध्यात्मिक जीवन में आगे नहीं बढ़ सकता। मैंने लोगों को बर्फ पर स्केटिंग (फिसलने) का अधिक खतरनाक खेल खेलने के पूर्व निशान बनाकर आसान स्केटिंग का अभ्यास करते देखा है। इसी तरह आध्यात्मिक जीवन में भी ध्यान के कड़े नियमों से सर्वप्रथम आरम्भ करना चाहिए। बाद में इन नियमों का अतिक्रमण किया जा सकता है।

(क्रमश:)

पृष्ठ 5 का शेष

चलता रहे मेरा संघ

पूर्ण में से पूर्ण निकाल लें तो भी शेष पूर्ण ही बचता है, यह बात एक साधारण मनुष्य के कैसे समझ में आ सकती है। इसलिए ईश्वर को जानना होता नहीं है। जानने का प्रयत्न सफल नहीं होता। भगवान को मानना है। मानकर आगे बढना होता है। आगे बढने के तीन मार्ग बताए गए है-कर्म का मार्ग, भक्ति का मार्ग और ज्ञान का मार्ग। क्षत्रिय युवक संघ के प्रशिक्षण में तीनों मार्गों का सम्मिश्रण है। जिसकी रुचि हो उसी मार्ग पर आगे बढ सकता है। दंपती शिविर में दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने की राह प्रशस्त करने का प्रयास है ताकि गंतव्य की ओर बढने में परस्पर सामञ्जस्य बने और राह सुगम हो। जैसा पहले कहा गया कि इस शिविर का पूरा लाभ लेने के लिये बताए गये नियमों का जागृति के साथ पालन करें।

क्षत्रियत्व की प्रतिमूर्ति : दुर्गादास राठौड़

– रेवंतसिंह पाटोदा

भगवान श्री कृष्ण ने गीता के अठारहवें अध्याय के तैंयालिसवें श्लोक में क्षत्रिय के गुणों का वर्णन करते हुए बताया कि शौर्य, तेज, धैर्य, दक्षता, युद्ध से पलायन न करना, दानशीलता एवं ईश्वरीय भाव क्षत्रिय के स्वाभाविक गुण हैं। दुर्गादास जी इन गुणों की प्रतिमूर्ति थे। विगत अंक में हमने प्रथम गुण शौर्य और दुर्गादास जी के जीवन का विवेचन पढा। इस अंक में प्रस्तुत है द्वितीय गुण तेज और दुर्गादासजी के जीवन का विवेचन।

तेज की परिभाषा को शब्दों में बांधें तो निकलकर आता है कि जिस व्यक्ति के प्रभाव से मनुष्य दूसरों का दबाव मानकर अपने कर्तव्य पालन से विमुख न हो और दूसरे लोग न्याय के प्रतिकूल व्यवहार करने से डरते हों, उस व्यक्ति की वह शक्ति तेज कहलाता है। इस परिभाषा का दुर्गादासजी के जीवन के साथ सम्बन्ध इस दोहे से स्पष्ट होता है –

धोळे दिन धाका पड़ै, दिल्ली रे दरगाह।
यूं बक-बक औरंग उठै, वो आया दुरगाह।।

औरंगजेब उनसे सदैव आशंकित रहता था एवं मुगल सल्तनत जब अपने पूरे यौवन में थी, औरंगजेब जैसा क्रूर धर्मान्ध बादशाह उनका नेतृत्व कर रहा था, उस समय उससे लोहा लेना बिना तेज के सम्भव नहीं था। दुर्गादासजी के दक्षिण प्रवास के समय औरंगजेब को स्वयं को दिल्ली छोड़कर दक्षिण जाना पड़ा, उसी दौर में उसके समक्ष दुर्गादासजी एवं शम्भाजी के चित्र रखे गये। शम्भाजी चित्र में जंगल में एक पेड़ के नीचे बैठ खाना खा रहे थे एवं उनका घोड़ा पास में बंधा था। वहीं दुर्गादास जी चित्र में घोड़े पर चढे हुए थे, एक हाथ से घोड़े की लगाम पकड़ी थी एवं दूसरे हाथ से बाटी दांतों से तोड़कर खा रहे थे। औरंगजेब की प्रतिक्रिया थी कि- इस पहाड़ी चूहे (शम्भाजी) को तो मैं काबू कर सकता हूँ, लेकिन इस मारवाड़ी कुत्ते (दुर्गादासजी) ने मेरी नाक में दम कर रखा है। इस बात से स्पष्ट है कि साधन विहीन दुर्गादासजी जी भी मुगल काल के सर्वाधिक शक्तिशाली सम्राट के प्रथम शत्रु थे और यह उनके तेज का ही प्रभाव था। उस समय की औरंगजेब की झुंझलाहट इस दोहे से प्रकट होती है –

दुर्गा रो रंग देख, औरंग रो रंग उतरग्यो।
मारी रंगड़ मेख, चुलगी दिल्ली चकरिया।।

अपने समय के सर्वाधिक शक्तिशाली व कूटनीतिज्ञ बादशाह के चित्त पर दुर्गादासजी के तेज के प्रभाव से आतंक का अनुमान बम्बई गजेटियर में प्रकाशित हो चुके उस पत्र की नकल से लगाया जा सकता है जिसमें उसने अहमदाबाद के सूबेदार एवं अपने पुत्र आजम को दुर्गादास जी को किसी भी प्रकार से मारने का आदेश दिया। उसने लिखा कि यदि युद्ध में न मार सको तो छल कपट से मारो क्योंकि दुर्गादास के रहते आराम नहीं है। उसने दुर्गादास जी को संधि के बहाने बुलाया। वे थोड़ी सेना सहित रवाना हुए लेकिन अहमदाबाद के पास पहुँचने पर उनके मित्र गुजरात के एक कोली राजा ने उन्हें धोखे से मारने के षड़यंत्र के बारे में बताया और वे लौट पड़े। मार्ग में मुगल सेना ने घेरा, युद्ध हुआ, कई हताहत हुए, दुर्गादास जी का युवा पौत्र भी काम आया। पालनपुर के उर्दू इतिहास में इस घटना का विवरण उपलब्ध है।

दुर्गादास जी अकेले थे, कोई सेना नहीं थी लेकिन फिर भी शत्रु के दिल में दहशत रहती थी। एक बार नारनौल तक धावा मारकर लौटते समय दुर्गादास जी साथियों से बिछुड़ गए एवं अकेले रात्रि के समय सितारों की सहायता से मार्ग ढूंढते आ रहे थे। मार्ग में एक श्मशान में जलती आग में पेट की क्षुधा शान्त करने के लिये घोड़े की पीठ पर ही छागळ के पानी से आटा गौंदकर बाटी बनाई व भाले की नोक से सेकने लगे। इतने में शत्रु सेना के सात इक्के (हत्या करने के लिये विशेष रूप से प्रशिक्षित योद्धा) आ पहुँचे। दुर्गादास जी ने धैर्य पूर्वक बिना डरे उनसे पूछा कि पहले बाटी खा लूं या तुमसे निपटूं। इक्के अपनी क्षमता पर अति आत्मविश्वासी थे, उन्होंने पहले बाटी खा लेने को कहा।

शान्ति से बाटी सेककर खाकर उनसे लड़े। एक-एक कर छः को मार दिया एवं एक का कान काटकर बादशाह को सूचना देने के लिये छोड़ दिया। इस प्रकार दुर्गादास जी की हत्या करने के लिये औरंगजेब द्वारा विशेष दल गठित करना उनके तेज को प्रमाणित करता है। इस घटना के सम्बन्ध में एक दोहा इस प्रकार है-

सुबरण थाळां मायने, जीमे भूप अनेक।
दुरगो भालां ऊपरां, खादी बाटी सेक।।

औरंगजेब जैसे जिद्दी बादशाह को संधि करने को मजबूर करना एवं अजीतसिंह के लिये जालौर, सिवाना व सांचौर के परगने देने को मजबूर करना इनके प्रभाव का ही परिणाम था।

मुगल सेना पर दुर्गादासजी और उनके सैनिकों का ऐसा भय था कि बड़े-बड़े शाही सेनापति रात्रि में अपने सैनिक शिविरों से दूर जाकर, छिपकर अकेले में सोते थे। बहुत सारे मुगल फौजदार एवं थानेदार अपने थानों की रक्षार्थ उन्हें धन देकर अपनी जान बचा पाते थे। दुर्गादासजी के प्रभावशाली व्यक्तित्व का ही प्रभाव था कि उनके विद्रोह को दबाने के लिये भेजा गया औरंगजेब का पुत्र अकबर अपने पिता से विद्रोह कर उनके पक्ष में आ गया।

दुर्गादासजी के तेज का प्रभाव अजमेर के सूबेदार नवाब इनायत खाँ द्वारा औरंगजेब को लिखे पत्र से स्पष्ट होता है जिसमें वह अजीतसिंह को जोधपुर देकर विद्रोह शान्त करने की प्रार्थना करता है। उस प्रार्थना पर प्रकाश डालता डिंगल गीत प्रस्तुत है -

असपत ने लिखै नवाब इनायत, दाव पेच कर थाको दौड़।
मरुधर मांहे मुगलां ने, ठौड़-ठौड़ मारै राठौड़।।
बंध किया अै गाँव बाळिया, पाघर लड़वाई पाडीस।
थाणा तोड़ उथापै थापै, खगपाणां आवै चढ सीस।।
म्हांनै किण आंटै मारावो, सुणो अरज म्हारी सुल्तान।
दिली जीवता जदी देखस्यां, जद आंनै देसो जोधाण।।

एक और दोहा उनके तेज का प्रभाव बताता है,-

मुगलां काज झुरै मुगलांणी आंसू न्हाक अपारा।
मारु दुर्ग घरा दिसी मोकल हिन्दुस्याम हमारा।।

मुगल उमरावों की बेगमें अपने प्रियतमों के विरह में आंसू बहा रही है और कातर स्वर में पुकार कर विनती कर रही है-'हे दयालु हिन्दु! मारवाड़ के वीर दुर्गादास! हम अबलाओं पर दया करो और हमारे पतियों को सकुशल घर लौटने का रास्ता दे दो।

दक्षिण से वापस लौटकर जब दुर्गादास जी ने पुनः संघर्ष की डोर संभाली तो यह समाचार पाकर स्थिति यह होती है कि कोई अजमेर का सूबेदार बनने को राजी नहीं होता। अतः औरंगजेब को बार-बार सूबेदार बदलने पड़ते हैं।

ऐसा था हमारे दुर्गा बाबा का तेज। *(क्रमशः)*

पृष्ठ 4 का शेष

समाचार संक्षेप

नहीं, पर दुर्गादासजी ने संगठन के प्रयास को कभी छोड़ा नहीं। महाराणा राजसिंहजी से, मरहठों से, पंजाब के सिखों से और भरतपुर के जाटों का संगठन करने के उन्होंने प्रयास किए पर अन्य लोगों की ऐसी मानसिकता भी नहीं थी।

उनका समाज चरित्र भी अद्भुत था। जब उन्होंने अनुभव किया कि उनके मारवाड़ में रहने से गृह क्लेश की संभावना है तो वे चुपचाप चले गए मेवाड़। जिस मारवाड़ के लिये इतना लम्बा और कष्ट कारक संघर्ष किया उसे भी छोड़ते हुए उन्होंने देर नहीं लगाई। ऐसे महापुरुष की जयन्ती श्रावण शुक्ला चतुर्दशी और 13 अगस्त को जगह-जगह मनाई गई। संघ की शाखाओं में राजस्थान व गुजरात में प्रतिवर्ष मनाई जाती है। संघ के कार्यक्रमों के अलावा समाज में अनेक स्थानों पर अनेक संस्थाएँ भी दुर्गा बाबा की जयन्ती मनाती हैं। संघ के मारूड़ी, मेड़ी मगरा, पाली, केतु हामा, तनावड़ा, अर्जुना, तेजमालता में चल रहे प्रशिक्षण शिविरों में जयन्ती मनाई गई। बीकानेर में क्षत्रिय सभा द्वारा बड़े स्तर पर मनाई गई। जयपुर में संघ शाखा के अतिरिक्त वीर दुर्गादास राठौड़ स्मृति समिति ने मनाई। श्री डूंगरगढ़, उज्जैन में वीरवर की छत्री पर संघ के तत्वावधान में; गुजरात में पडुस्मा, भावनगर, धोलेरा, कोरियाणी, छेर व सूरत में; मुंबई में तणेराज शाखा, अंधेरी साप्ताहिक शाखा, नारायण शाखा व भायंदर में; मूलाना, बिरामी, बालोतरा, डीडवाना, जोधपुर में भी जयन्ती मनाई गई।

सौराष्ट्र की शौर्य गाथा

रंग है रवाभा को

– स्वामी सच्चिदानन्द जी

बिना पुलिस (रक्षा दल) के शासन नहीं हो सकता। शासन करने का अर्थ ही प्रजा की जान-माल की रक्षा। प्रजा पूर्ण रूप से सुरक्षित हो तभी वह सुखी हो सकती है। रक्षा के अलावा बाकी सब प्रजा संभाल लेती है। राज्य आर्थिक, शैक्षिक, ज्ञान-विज्ञान युक्त और उद्योग-व्यापार आदि से सम्पन्न हो, मगर प्रजा सुरक्षित न हो, निर्भय न हो तो सब निरर्थक समझा जाता है। प्रजा को परेशान करने वाला एक वर्ग सदैव तैयार रहता है। वह है गुंडा वर्ग। गुंडे सभी क्षेत्र के होते हैं मगर आर्थिक और यौन प्रकार के गुंडे भारी पीड़ा पैदा करते हैं। आर्थिक गुंडे धन-माल की सलामती रहने नहीं देते तो यौन गुंडे किसी की भी बहन-बेटियों को सुरक्षित नहीं रहने देते। धन लूट लिया जाए उससे भी स्त्री लुट जाए उसकी पीड़ा अधिक और जीवन भर की होती है। अत: पुलिस की बहुत आवश्यकता है। मगर पुलिस मर्दानगी भरी, नीति युक्त व कुशल हो तब ही इन गुंडों का सामना कर सकती है। पुलिस यदि मर्दानगी व कुशलता विहीन हो तो वह अपने आप अनीति गामी हो जाएगी। ऐसी अनीति गामी पुलिस जल्दी ही भ्रष्ट हो जाती है, टूट जाती है। दूसरे सब टूट जाएँ तो शायद चलेगा, मगर यदि पुलिस टूट जाए तो राज्य का नसीब ही फूट जाता है। राज्य का व्यवस्था तंत्र टूट जाए तो सब टूट जाएगा। शासन तंत्र के तम्बू का आधार पुलिस दल है।

भावनगर राज्य के भाल क्षेत्र (धोलेरा-धंधुका-वल्लभीपुर क्षेत्र) का नवाब खाँ नामक जमादार राज्य का राजस्व लेकर भावनगर गया और राजस्व जमा करा कर अपने एक परिचित संधी (मुस्लिम उप जाति) के वहाँ मेहमान हुआ। उस समय होटल नहीं थे और होटल जैसी ठहरने खाने की परम्परा भी नहीं थी। लोग सगे-सम्बन्धियों के घर पर या धर्मशाला या सरकारी कोटड़ी में ठहरते थे।

नवाब खाँ को संधी से जानकारी मिली कि भाल प्रदेश का एक बनिया रुपयों की जोखिम के साथ भावनगर से भाल जाने को निकलने वाला है। गाँव में जैसा धन्धा, वैसी जानकारी सम्बन्धित लोग रखते रहते हैं। संधी समाज की छाप लोगों में अच्छी नहीं थी। जानकारी पाकर नवाब खाँ का मन ललचाया। सम्पत्ति और स्त्री भले-भले लोगों को फिसलाने वाली मानी जाती है। कब किसका मन कहाँ विचलित हो जाए, कोई कह नहीं सकता। लालच व्यक्ति को खींचता है और खींचा गया व्यक्ति न करने जैसा कर बैठता है। ऐसे खिंचाव को मुसलमान लोग शैतान कहते हैं। जो ईमान छुड़वा दे वह शैतान होता है। ईमान ही धर्म का मूल आधार है। नवाब खाँ खिंचा गया, फिसल गया। खुद पुलिस जमादार होते हुए भी रक्षक से मिटकर भक्षक बनने को तैयार हो गया। उसने संधियों की टोली बनाई। बिना टोली गुण्डागिरी नहीं हो सकती। सब शिकार पर टूट पड़ने के लिये रवाना हुए।

वह दिन था चैत्र शुक्ल नवमी, श्री राम का जन्म दिन-रामनवमी। हिन्दु लोग श्रीराम का जन्मदिन मनाने में तल्लीन थे। कई लोग उस दिन उपवास करते हैं। ऐसे पवित्र दिन को नवाब खाँ और उसकी टोली कालाकर्म-दुष्कर्म करने के लिये निकल पड़े। दुष्कर्मी लोगों के लिये पवित्रता-अपवित्रता विचारणीय नहीं होती। जिस तरह यमराज उत्सव-त्योहार को भी छोड़ते नहीं उसी तरह ऐसे नीच कर्मी किसी भी दिन, चाहे कितना ही बड़ा पदासीन हो, काला नाग डंस मारने से चूकता नहीं।

बनिये की दो बैल गाड़ियाँ सामान से भरी है। एक को मूलू परमार नामक एक राजपूत चला रहा था, दूसरी को जगमल कोली चला रहा था। रास्ते में और दो-तीन गाड़ियाँ साथ हो गई। उनमें गाँवों के लोग बैठे थे। खरीद करके सब बैल गाड़ियों से वापस जा रहे थे। एक गाड़ी में गोरधन सेठ और चांपसी सेठ बैठे हैं। बनिया मतलब

समझदारी का पुतला। समझदारी साहसिक नहीं होती। वह आगे-पीछे की सोचती है। जो ज्यादा सोचता है वह बहादुर नहीं हो सकता। बहादुरी व प्रेम लगभग अन्धे होते हैं। जोखिम को साथ लेकर निकलने वाले दोनों सेठ चिंतातुर हैं। जोखिम कभी निश्चिन्त नहीं होती। बनियों को ज्यादातर धन की जोखिम होती है। धन साथ में था ही, अत: चिंतित मन से वे आगे बढ रहे थे। उपाय ढूंढ निकाले उसे बनिया कहते हैं। रास्ते में एक घुड़सवार राजपूत मिल गया। 'ओह! ये तो हमारे रवाभा! रवाभा बापू!' बनियों को पहचान बना लेना भी आता है और उसका फायदा उठाना भी आता है। आवश्यकता न हो तो चाहे कैसी पहचान हो, बनिया मुँह फेर लेगा। रवाभा भाल प्रदेश के पच्छेगाँव के गोहिल ठिकाने के वडोद गाँव के थे।

सभी भावनगर से 15-20 किलोमीटर दूर आये आम के एक बड़े पेड़, जो कालिया आम्बा के नाम से जाना जाता था, वहाँ रवाभा मिल गये। रवाभा स्वामि- नारायण सम्प्रदाय के हरिभक्त थे। स्वामिनारायण वाले बहुदा 'जय स्वामिनारायण' ही बोलें और कुछ न बोलें। हिन्दु तो बोलते हैं उन्हें किसी से दुराव नहीं। वे राम-राम, जय माता जी, जय श्रीकृष्ण, जय सीताराम-सब बोलें। किसी से दुराव नहीं। धर्म को इन बातों से दुराव नहीं होता और सम्प्रदाय शायद ही कोई बिना दुराव के हों।

सभी ने रवाभा को 'जय स्वामिनारायण' किया। सब प्रसन्न हुए। बनियों को रक्षक की आवश्यकता थी, जो मिल गया। नदी पार कर सामने के तट पर सब पहुँचे कि वहाँ दो शस्त्रधारी संधी भी साथ हो गये। राजपूत शायद नि:शस्त्र होगा मगर संधी कभी नहीं क्योंकि वे शस्त्रजीवी हैं। बातों से रवाभा को जानकारी मिली कि संधी लोग उतने मार्ग के रखवाल (रक्षक) थे। अत: वे साथ चलने लगे। यद्यपि रवाभा को वहम हो गया था कि संधी सच नहीं बोल रहे हैं।

थोड़ा आगे गये तो दूसरे दो और संधी मिल गये। दो और नदी के तट पर बैठे थे। इस तरह छ: संधी हो गए। रवाभा को विश्वास हो गया कि संधियों की नीयत अच्छी नहीं है। उन्होंने अपनी तलवार संभाल ली। आगे चलते संधियों ने गाड़ियाँ रुकवाई और कहा-'देखना पड़ेगा। हमको अन्दर अफीम होने की शंका है।' उन दिनों अफीम की तस्करी होती थी।

संधियों ने रवाभा को कहा,-'दरबार! (ठाकुर) आप अपनी गाड़ियां ले जाओ। आपकी गाड़ियों को नहीं देखना है।' संधी लोग रवाभा को बनियों की गाड़ियों से अलग कर देना चाहते थे। चतुर शिकारी पशु चतुराई से कमजोर व छोटे शिकार को अलग कर देता है। बलवानों का समूह कमजोर को रक्षण देता है। बनिये इस समय कमजोर थे और संधी शिकारी थे। मगर रवाभा अलग नहीं हुए। उन्होंने बनियों का साथ नहीं छोड़ा। समझदारी तो यही कहेगी कि बनियों का साथ छोड़ दो और अपने को बचाकर चलते बनो। समझदारी सदैव अपने स्वार्थ की बात ही सोचती है। शौर्य में समझदारी कम होती है। इसी कारण वह पराये झगड़े को भी अपने सर ले लेता है।

बनियों का जीव तलवे पर लग गया, अर्थात् वे बहुत डर गए। यदि रवाभा अपने गाडे लेकर चले जाते हैं तो संधी सरलता से उनको लूट लेंगे। मगर रवाभा राजपूत थे। उन्होंने डरे हुए बनियों को ढाढस बंधाया। 'फिकर मत करना, मैं आपके साथ ही हूँ। कोई कुछ नहीं करेगा।'

संधियों और रवाभा के बीच बोलचाल हुई।आखिर वे रवाभा पर टूट पड़े। बनिया सेठ तो गाडे के पीछे छिप गये, मगर जगा कोली साथ में आ गया। शूरवीरता को निमंत्रण की आवश्यकता नहीं होती। वह अपने आप कूद पड़ती है। जबकि कायरता को चाहे जितना आह्वान किया जाय, शौर्य प्रेरक ढोल बजाया जाय, वह कभी भी कूद नहीं पड़ेगी। वह तो छिप जाने में ही समझदारी मानेगी।

भयंकर दंगल मचा। धर्म की स्थापना व रक्षा अहिंसा से नहीं होती, शौर्य से होती है। देखते ही देखते दो संधियों को रवाभा ने काट गिराया। बाकी के सब भाग गये। बनियों ने भावनगर प्रशासन को संदेश भेज दिया

(शेष पृष्ठ 19 पर)

क्रियात्मक पथ का मार्गदर्शक साहित्य

– कृपाकांक्षी

संघ के साधना पथ पर चलने वाले पथिकों के मार्गदर्शन के लिये पूज्य तनसिंहजी ने विपुल साहित्य की रचना की। हम सब चलने वाले पथिक कभी न कभी उस साहित्य को पढ़ते हैं। हमारे में से अनेक लोग जब संघ के सम्पर्क में आते हैं तो साहित्य खरीदते हैं और उसे पढ़ते भी हैं। हमारे में से अनेक लोगों ने उसे पूरा पढ़ा भी है। पढ़कर समझने का प्रयास भी किया है और प्राय: हम मान भी चुके होते हैं कि हमने संघ साहित्य पढ़ लिया है। लेकिन क्या समझ पाए हैं या जिस प्रकार हमने पढ़ा है क्या उसे उस प्रकार समझा जा सकता है? प्राय: हम सबका उत्तर होता है कि पढ़ा तो है लेकिन समझ में नहीं आया या फिर हम यह मान लेते हैं कि हमने पढ़ लिया है, समझ लिया है। लेकिन इसके लिये हमें यह समझना पड़ेगा कि संघ का साधना पथ क्रियात्मक पथ है। इस पथ पर चलते-चलते हम प्रगति के सौपान तय करते हैं। विभिन्न समस्याओं से रू-ब-रू होते हैं, अनेक गति अवरोधकों को पार करते हैं और ऐसे में इस क्रियात्मक पथ पर चलते-चलते जिस सौपान पर हैं उसी सौपान की सोच के अनुरूप ही हमारी क्षमता साहित्य को समझने की बन पाती है। इस प्रकार जैसी हमारी स्थिति होती है उसी के अनुरूप हमें साहित्य समझ में आता है। लेकिन चलते-चलते ज्यों ही हमारा सौपान बदलता है साहित्य में वर्णित मार्गदर्शन भी हमारे लिये बदल जाता है। नए सौपान पर नए प्रकार के अनुभव होते हैं, नई प्रकार की समस्याएँ होती हैं और इन्हीं नई परिस्थितियों के संदर्भ में हमारे लिये साहित्य में वर्णित मार्गदर्शन के मायने भी बदल जाते हैं। इस प्रकार पूज्य तनसिंहजी द्वारा हमारे मार्गदर्शन हेतु रचा साहित्य भी क्रियात्मक है। साधक की समस्याएँ पढ़ते समय हम यदि महत्त्वाकांक्षा के नासूर में ही अटके हुए हैं तो श्रद्धा का भ्रम हमारे समझ में नहीं आ सकता और अभीप्सा के फीके रंग तो हमारे लिये अपरिचित ही रहेंगे। लेकिन ज्यों ही महत्त्वाकांक्षा के नासूर पर थोड़ी प्रगति होगी तो रूढ़िगत साधना के द्वार खुलते हैं लेकिन साथ ही इस बात की भी सदैव सावधानी रखनी पड़ती है कि महत्त्वाकांक्षा का नासूर समूल नष्ट नहीं होता बल्कि अंत तक बना रहता है इसलिए उस प्रकरण को भी एक बार पार कर छोड़ा नहीं जा सकता। साधना पथ में जलने वाले दीपक भी एक के बाद एक ही जलते हैं और जो दीपक जलता है उसी के आलोक में अगले दीपक की ओर बढ़ा जा सकता है। लेकिन पिछला दीपक अनवरत जला रहे इसके लिये निर्देशित मार्गदर्शन को भी सतत स्मरण रखना आवश्यक है। पंछी की राम कहानी को पंछी बने बिना नहीं समझा जा सकता और ज्यों-ज्यों पंछी आगे बढ़ता जाता है त्यों-त्यों वह रामकहानी में भी उतरता रहता है। जो इस पथ का पथिक नहीं रहता या एक स्तर पर आकर रुक जाता है उसकी राम कहानी भी वहीं रुक जाती है। भिखारी की आत्मकथा में कब हम भिखारी बनते हैं और कब मतलब के यार, कब हम मेहमान की भूमिका में होते हैं और कब उज्ज्वल भविष्य, इसे इस पथ पर चले बिना नहीं समझा जा सकता और जितना चलेंगे उतना ही समझ पाएंगे। एक बार मेहमान से सहयोगी बनने के बाद फिर कभी मेहमान नहीं बनेंगे इसकी भी कोई गारंटी नहीं है इसलिए सतत् रूप से भिखारी की आत्मकथा के सभी पात्रों को जानते रहना आवश्यक है। कोई लापरवाह बने बिना लापरवाह के अनुभवों से साक्षात्कार नहीं कर सकता और लापरवाह के जीवन की विभिन्न अनुभूतियों को लापरवाही के स्तर को अपेक्षित स्तर तक ले जाकर ही समझा जा सकता है। इस प्रकार यह साहित्य ना ही तो कोई निबंध है और न ही उपन्यास। इसलिए इसे निबंध या उपन्यास की

(शेष पृष्ठ 16 पर)

मैं उसको ढूँढ रहा हूँ-6

– महेन्द्रसिंह गूजरावास

सुणा जद तुर्कों का वो घात।
निभाई पुरखों की जो बात।।
पहुँचगी खण्डेला बारात।
कहाँ है शेखावत सुजान।।
मैं उसको ढूँढ़ रहा हूँ।
जौहर औ' शाकों के निशान।
कहाँ है रजपूती वो आन।।
मैं उसको ढूँढ रहा हूँ।

शादी के पश्चात् ठाकुर सुजानसिंह शेखावत की बारात वापस अपने गाँव छापोली जा रही थी। लम्बी यात्रा की थकान दूर करने, घड़ी दो घड़ी विश्राम के लिये छाया-पानी देख बारात ने पड़ाव डाल दिया। नवविवाहिता, पर्दे लगे रथ के अन्दर सोने का प्रयास कर रही है, लेकिन नींद नहीं आ रही.....। निगाहें बार-बार बाहर पेड़ की छाया में विश्राम कर रहे दुल्हे पर जा पहुँचती। सुजानसिंह अर्द्ध निद्रा में सतरंगी सपनों से लुका-छिपी खेल रहे थे, कि अचानक सुनाई दिया –

झिरमिर झिरमिर मेवा बरसै, मोरां छतरी छाई।
जग में है तो जाण सुजाण, फौज देवरे आई।।

शहंशाह आलमगीर के आदेश पर तुर्कों की फौज खण्डेला के मोहनजी का मन्दिर तोड़ने आ रही है। राजपूत का आह्वान हुआ है....., और क्षणभर में ही निर्णय हो गया, बारात छापोली की बजाय खण्डेला की ओर मुड़ गई। केशरिया बाना पहने, तुरा-कलंगी के साथ बाईस वर्षीय ठाकुर सुजानसिंह शेखावत अपने चन्द साथियों के साथ मंदिर की रक्षा के लिये पहुँच गये। रातभर जीन कसे ही मन्दिर के सामने डटे रहे।

प्रात:काल होते-होते तुर्कों की फौज ने मन्दिर को घेर लिया। अल्ला हो अकबर के साथ तुर्क आगे बढ़े तो जय जय भवानी के उद्घोष के साथ राजपूत तुर्कों पर टूट पड़े। पुजारी ने देखा कि रक्तरंजित तलवार के साथ दुल्हे के रूप में सुजानसिंह साक्षात मोहनजी लग रहे थे। खचाखच, सुजानसिंह की तलवार ने कई तुर्कों को यमलोक भेज दिया। छापोली की छोटी-सी बारात ने तुर्कों का जबरदस्त सामना किया, धीरे-धीरे बाराती विदा होने लगे....., और अंत में मोड़ बंधा सुजानसिंह का सिर भी मोहनजी के चरणों में.....।

खण्डेला के उत्तर में खड़ी छतरी, जिस पर अंकित झूंझार और सती की मूर्तियाँ....., आज भी उस अनोखी बारात की याद दिला रही है, याद दिला रही है कि मान-बिन्दुओं की रक्षा के लिये क्षत्रिय किसी भी परिस्थिति अथवा परिणाम की परवाह नहीं करता। परन्तु आज वो तस्वीर धुंधली क्यों होने लगी है? सुनहले और रूपहले, मोह और ममता के क्षणों को ठोकर मारकर कर्तव्य का रास्ता अपनाने वाले, आज कहाँ हैं? कहाँ हैं यह कहने वाले कि ये कंकण-डोरड़े तो अब मोहनजी के मन्दिर में ही खुलेंगे, कहाँ है शेखावत सुजान, मैं उसको ढूँढ रहा हूँ।

पृष्ठ 15 का शेष

क्रियात्मक पथ का मार्गदर्शक साहित्य

तरह पढ़कर बंद नहीं किया जा सकता बल्कि ये जीवन के गाढ़े अनुभव हैं जो इस मार्ग पर चलने पर आने स्वाभाविक हैं। इस प्रकार इनके आलोक में जहाँ इस मार्ग पर बढ़ा जा सकता है वहीं इस आलोक को जागृत रखने के लिये मार्ग पर बने रहना भी उतना ही आवश्यक है। इसलिए आवश्यक है कि हम सतत रूप से इस क्रियात्मक पथ पर मार्गदर्शन हेतु रचित इस साहित्य का इस धारणा के साथ सतत् अध्ययन करते रहें कि प्रत्येक बार यह हमें नवीन जीवन सत्यों से परिचित करवाएगा। लेकिन यह भी संघ की कृपा के बिना संभव नहीं हो सकता इसलिए कृपा की आकांक्षा सदैव बनी रहे।

✻

मा कर्मफलहेतुर्भूः

– सुदर्शनसिंह 'चक्र'

'आप रक्षा कर सकते हैं-आप बचा सकते हैं मेरे बच्चे को।' वह वृद्धा क्रन्दन कर रही थी। 'आप योगी हैं। आप महात्मा हैं। मेरे और कोई सहारा नहीं है।'

उस वृद्धा का एकमात्र पुत्र रोगशय्या पर पड़ा था। आज तीन महीने हो गए, कुछ पता नहीं चलता कि उसे हुआ क्या है। उसे भूख लगती नहीं, मस्तक में भयंकर पीड़ा होती है। पड़े-पड़े कराहता तो क्या, आर्तनाद किया करता है। वृद्धा के और कोई नहीं। उसके बुढापे का सहारा उसका यह युवा पुत्र-इसी वर्ष उसका द्विरागमन होना था-अब क्या होगा? वैद्य-हकीम सभी तो कर लिये। घर में जो कुछ था-गहने ही नहीं, बर्तन तक बिक गये। जिसने जो बताया वही किया; किन्तु रोग है कि बीस से उन्नीस होने का नाम नहीं लेता।

झाड़-फूंक, टोने-टोटके, यंत्र-मंत्र कुछ बाकी नहीं। दुखी पुरुष इधर-उधर हाथ मारता है। बेचारी वृद्धा बहुत ही दुखी-अत्यन्त आर्त है। पता नहीं, किसके-किसके उसने पैर पकड़े हैं। आज सुना कि बंदा बैरागी आये हैं तो दौड़ पड़ी। उसने सुना है कि बंदा योगी हैं। गुरु ने अपना तेज दे दिया है बंदा को। वे महापुरुष हैं। अकाल पुरुष की ज्योति उनमें उतरी है। वे अत्यन्त दयालु हैं, तब क्या उस पर दया नहीं करेंगे। बंदा के पास पहुँचकर वह सीधे उनके पैरों पर गिर पड़ी। दोनों हाथों में उनके पैर पकड़ कर लिपट गई। जब तक महापुरुष कृपा नहीं करेंगे, वह उनके पैर नहीं छोड़ेगी।

'माँ!' बंदा चौंक पड़े। उन्होंने बड़ी कठिनाई से वृद्धा को अपने पैरों पर से उठाया। वृद्धा ने रोते हुए कहा-'मेरा बेटा मरणासन्न है; आप आशीर्वाद दें, वह अच्छा हो जाय। आपके आशीर्वाद से वह अवश्य रोग मुक्त हो जाएगा।'

'मैं क्या आशीर्वाद दूंगा। मेरे पास तो न कोई सिद्धि है, न तपस्या की शक्ति और न पुण्य।' बन्दा ने सम्भालने का प्रयत्न किया। 'कुछ कार्य मेरे द्वारा होता भी है तो वह परम पुरुष की कृपा और गुरु की प्रेरणा से। मैं कौन होता हूँ। जिसकी शक्ति कार्य करती है, कार्य के फल उसके।'

'आप एक चुटकी भष्म दे दें।' बुढिया इस समय उपदेश सुनने-समझने की स्थिति में नहीं थी। वह गिड़गिड़ा रही थी।

'जैसी जगदम्बा की आज्ञा।' बन्दा अत्यन्त गंभीर हो उठे। उन्होंने उस बुढिया के सामने मस्तक झुकाया-'आप जगदम्बा ही तो हैं। बच्चे से जो कराना हो करा लें।' और बन्दा के अनुचरों ने देखा कि उनका वह प्रसिद्ध सेनानी, आततायियों का चमत्कारी मूर्त आतंक आज सचमुच एक बैरागी बन गया है। एक साधु की गंभीरता से बंदा ने वृद्धा के पैरों के पास से ही एक चुटकी धूलि उठायी, उसे मस्तक तक ले गये, एक बार दृष्टि आकाश की ओर गयी और वह धूलि उन्होंने वृद्धा के हाथ पर रख दी।

'मेरा बेटा अब जी जाएगा।' बुढिया उल्लासपूर्वक उठ खड़ी हुई। उसने नहीं देखा कि बन्दा के नेत्र भर आये हैं। 'तुम्हारी तपस्या पूरी हो। तुम अकाल पुरुष के प्यारे बनो!' आशीर्वादों की वर्षा करती वह लौट पड़ी अपने घर की ओर।

* * *

'सूबेदार की सेना आ रही है। लगता है उसे आपके यहाँ होने का पता लग गया है। बहुत बड़ी सेना है।' एक घुड़सवार सिख घोड़ा दौड़ाता आया था। कुछ दूर ही घोड़े से वह कूद पड़ा और बन्दा के सामने आकर मस्तक झुकाकर खड़ा हो गया। उसका घोड़ा पसीने से लथपथ हो रहा था। मुख से झाग गिर रहा था। स्पष्ट था कि वह पर्याप्त दूरी से अत्यधिक वेग पूर्वक दौड़ाया गया है और उसे बीच में तनिक भी दम नहीं लेने दिया गया है।

'हमारे साथ इस समय केवल पच्चीस सैनिक हैं।' बन्दा के समीप खड़े, सुदृढकाय विशालदेह पुरुष ने बन्दा

की ओर देखा-'आप आज्ञा करें तो हम लोग अब भी पर्वत तक पहुँच सकते हैं।'

'छि:!' बन्दा के नेत्रों में चमक आई। 'अपने प्राणों के मोह से बैरागी इन ग्रामीणों को भेड़ियों की कृपा पर छोड़कर भाग जायेगा? तुम्हें भय लगता है?'

'धीरसिंह कभी डरा नहीं है।' उस भीमकाय पुरुष के नेत्र भी कठोर हुए और उसने अपनी मूंछों पर हाथ फेरा-'आप सुरक्षित निकल जायं तो हमारा नेता ही नहीं हमारा भाग्य सुरक्षित हो गया। मेरे साथ चार सैनिक छोड़ दीजिये, मैं इन आने वाले कुत्तों से सुलझ लूंगा।'

'अकाल पुरुष के हाथों में हम सबका भग्य सुरक्षित है।' बन्दा ने कवच धारण करते-करते कहा-'बैरागी अपने मित्रों को शत्रु के बीच छोड़ जाएगा, ऐसी आशा तुम उससे नहीं कर सकते।'

'सूबेदार की सेना आ रही है हमें लूटने और बैरागी ने तलवार उठा ली है।' अच्छा बड़ा ग्राम था-साधारण कस्बा। बात फैलते देर नहीं लगी। पंजाबी युवक का रक्त कभी शीतल नहीं रहा है और इस समय तो बहती गंगा में हाथ धोना था-'बन्दा वैरागी का साथ देने का हमें सौभाग्य मिला है। बैरागी-महाकाली खप्पर लिये युद्ध में जिसके आगे चलती है।'

पूरे पंजाब में बन्दा बैरागी अतिमानव-लोकोत्तर चमत्कारी महापुरुष माने जाते थे। वे पराजित भी किए जा सकते हैं, यह बात कोई सोच तक नहीं सकता था। शत्रु सेना पाँच सौ है, पाँच हजार है या पचास हजार है-कोई सोचना नहीं चाहता। विजय तो बैरागी के चरणों में रहती है। उनके नेतृत्व में शस्त्र उठाकर यश का लाभ ही तो लेना है।

'धीरसिंह!' अपने घोड़े पर बैठते-बैठते बन्दा ने सहचर को सम्बोधित किया-'हमारे पास केवल पच्चीस सैनिक नहीं हैं?'

'मैं आपके नाम का प्रताप समझता हूँ।' धीरसिंह ने देखा कि हल पकड़ने वाले हाथ अब भाला या तलवार उठाये हैं। ग्रामीण तरुणों की संख्या बढती जा रही है। वृद्ध तक दौड़े आ रहे हैं।

'प्रताप तो सर्वत्र परमात्मा का!' बन्दा ने किसी अलक्ष्य के प्रति मस्तक झुकाया। 'मिट्टी के किसी पुतले का प्रताप क्या हो सकता है। तुम इन नवीन सैनिकों को संभाल लोगे?'

'जैसी आपकी आज्ञा!' धीरसिंह ने ग्रामीण तरुणों को परिस्थिति समझायी और व्यूहबद्ध करना प्रारम्भ किया। इतना अनुशासन-कोई दीर्घकालीन सुशिक्षित सेना भी चकित रह जाय, क्योंकि धीरसिंह कह रहे थे-'आप सबके सेनापति इस समय बन्दा बैरागी हैं-महायोगी बैरागी। आपको उनकी आज्ञा के एक-एक अक्षर का पालन करना है।' 'हम पालन करेंगे!' बैरागी की आज्ञा तो परमात्मा की आज्ञा है। उसे अस्वीकार कोई कैसे कर सकता है।

पता नहीं था कि शत्रु किधर से आक्रमण करेगा, वह ग्राम पर घेरा डालेगा या सीधे घुस पड़ना चाहेगा; किन्तु बैरागी ने शत्रु की संख्या या उसके व्यूह की अपेक्षा कब की है। उनका अश्व जैसे वायु में उड़ रहा था। उनके आदेश यंत्र की भाँति उनके सैनिक-ग्रामीण पालन कर रहे थे। घड़ी भर में तो गाँव से एक कोस दूर तक चारों ओर मोर्चा जम गया। वृक्षों के शिखर, ऊँचे टीले, गहरे खड्ड-सब कहीं बैरागी के सैनिक सावधान बैठ चुके थे और मैदान में बन्दा के साथ चुने हुए दस घुड़ सवार धूलि उड़ाते दौड़ लगा रहे थे।

* * *

सचमुच विजय बन्दा बैरागी के चरणों के पीछे चला करती है। शत्रु का सैन्य दल ठीक कितना था, पता नहीं-पाँच हजार से अधिक ही होगा। बैरागी के पास सैनिक कुल पच्चीस थे, और ग्रामीणों को भी गिन लें तो पाँच सौ से अधिक नहीं। किन्तु युद्ध कठिनाई से तीन घंटे चला होगा।

सेना सूबेदार की ही थी, किन्तु वह न बैरागी को पकड़ने आई थी न उनसे युद्ध करने को प्रस्तुत थी। वे लोग तो आये थे-गाँव के निरीह लोगों को लूटने, काफिरों को कत्ल करके गाजी बनाने, साथ ही जेबें गरम करने और हो सके तो कोई सुन्दर सी लड़की ले जाने।

उनके सैनिकों के भाव इसी प्रकार के थे। सिर का सौदा करने को उनमें कोई तैयार नहीं था। बैरागी से सामना हो जाएगा, यह उन्हें पता होता तो इधर कदम रखने की भूल वे कर नहीं सकते थे।

'अल्लाहो अकबर!' की पुकार करती आततायियों की समुद्र सी उमड़ती वह सेना; किन्तु उन्होंने सुना-'सत् श्री अकाल!' 'वाह गुरु की फतह!' 'बन्दा बैरागी की जय!' और उनके मुखों से 'अल्ला हो अकबर!' बन्द हो गया। वे 'या खुदा:! या अल्लाह!' चिल्लाने लगे।

'बन्दा बैरागी-शैतान का फरिश्ता या काफिर!' हवाइयाँ उडने लगी शत्रु-सैनिकों के मुख पर-'शैतान इसके तीरों को सौ गुना कर दिया करता है। मल्कुल मौत इसके साथ दौड़ती है।'

सचमुच मौत दौड़ रही थी बन्दा के अश्व के साथ। उसका अश्व जिधर से निकल जाता था, उसके बाणों की बौछार उधर भूमि को लाशों से ढक देती थी।

'बैरागी आ गया। कयामत उतर आई उसके साथ।' बहुत शीघ्र शत्रु के पैर उखड़ गए। अपने घायलों तक को कराहते छोड़कर वे भागे और भागते चले गये। उन्हें बन्दा नहीं, बन्दा का भय खदेड़े चला जा रहा था; क्योंकि भागते शत्रु को तो न बैरागी कभी खदेड़ते न उन पर चोट करते।

✻ ✻ ✻

'आपकी कृपा से हमने विजय प्राप्त की।' बन्दा युद्ध से लौटे थे और अपने सदा के नियम के अनुसार वे किसी पर्वत पर अकेले ध्यान करने जाना चाहते थे। धीरसिंह ने आग्रह किया-'शत्रु से छीनी सामग्री के वितरण का तो आप आदेश दे जाएँ।'

'आप साक्षात भगवान हैं! आपने मेरे पुत्र को जीवित कर दिया।' सहसा वृद्धा आ गिरी बैरागी के चरणों पर। उसके साथ आया था उसका पुत्र। अब भी वह बहुत दुर्बल था, किन्तु उसके मुख पर आरोग्य की चमक आ चुकी थी।

'माता! परमात्मा को धन्यवाद दो। तुम्हारे पुत्र को उस दयामय ने अच्छा किया है।' बन्दा बैरागी ने धीरसिंह की ओर मुख किया-'और भाई तुम भी। विजय उस प्रभु की हुई और उसी की शक्ति से हुई।'

'फल हुआ वह प्रभु की कृपा, उनका प्रसाद।' बैरागी अश्व पर बैठते बोले-'उसे अपने कर्म का फल मानकर पूरे कर्म का उत्तरदायित्व क्यों सिर पर लेते हो। अपने को कर्मफल का कारण कभी मत बनाओ, फल को भगवान पर छोड़ दो। कोई कर्म तुम्हें बांध नहीं सकेगा।'

बैरागी का अश्व उड़ चला। विजय में प्राप्त श्रेय तथा सम्पत्ति न कभी वे लेते थे, न उसकी व्यवस्था का आदेश करते थे। वे वीतराग.....।

पृष्ठ 14 का शेष

रंग है रवाभा को

था, पुलिस आ पहुँची। रवाभा बहुत घायल हो गये थे। वे बेहोश होने ही वाले थे और बोले-'चाहे कुछ भी हो मेरे मुँह में शराब की एक बूंद भी मत डालना। जय-स्वामिनारायण।' रवाभा भक्ष्याभक्ष्य के चुस्त पालक थे।

बेहोश रवाभा को गाड़ी में सुलाकर देर रात को सब वडोद पहुँचे। उनके माताजी जग रहे थे। रवाभा के घायल होने का कारण जाना तो वे बोली-'आज मेरी रामनवमी सुधर गई-सफल हो गई।' बिना रोये-कूटे उन्होंने इतना ही कहा कि-'भाग्यवान को ही ऐसा अवसर मिलता है। मेरा रवा मर जाता तब भी मुझे दुख नहीं होता। प्रजा की रक्षा की है उसने, वही धर्म है राजपूत का। मैं धन्य हो गई।'

भावनगर के महाराजा जसवन्तसिंहजी को समाचार मिला। उन्होंने तलवार व भाला देकर रवाभा का सम्मान किया। उस जमाने में राजा-महाराजा तत्काल कदर करते थे। आज की तरह आतंकवादियों को मुठभेड़ में मारने वालों को जेल में सड़ने नहीं देते थे।

कहा जाता है कि जमादार नवाब खाँ को बहुत पश्चाताप हुआ। सरकारी आदमी होते हुए भी असहाय प्रजा को लूटने के धंधे में फंस गया। बाद में तो जब कभी वह कसूंबा लेता था तो पहली अंजलि रवाभा को देते हुए बोलता था-'रंग है रवाभा!' वह जब तक जिन्दा रहा, रवाभा को इसी तरह याद करता रहा।

विचार-सरिता

(त्रयोविंश लहरी)

– विचारक

मनुष्य जन्म से ही अनुशीलन प्राणी है। वह अपने से बड़ों का अनुसरण करता है। वह अपने से बड़ों को देखकर वे जैसा बोलते हैं, क्रिया आदि करते हैं, वैसा वह भी करना सीख जाता है। छोटा शिशु अपनी माँ का अनुसरण करते-करते ज्यों ज्यों दूसरों के सम्पर्क में आता है उन सबका अनुसरण करने का प्रयास करता है। इसलिए अपनी संतान को कैसा बनाना है यह उसकी माँ, पिता व परिवार पर निर्भर करता है। इसीलिए तो शास्त्रों में कहा गया है कि- ***''माता निर्माता भवति''*** अर्थात् माँ बालक या बालिका का निर्माण करने वाली है। शिशु की प्रथम गुरु माँ ही होती है अत: जीवन निर्माण में माताओं का दायित्व विशेष माना गया है।

इसके लिये आवश्यक है अत: हमारी भावी माताएँ किस प्रकार से सुसंस्कृत बनें, यह अभ्यास भारत की नारी के लिये प्राथमिकता से लिया गया है। जितने भी इतिहास पुरुष हुए हैं उन सबकी माताएँ अवश्य विदुषी थी, संस्कारित और विद्वान थी। माता मदालसा इसका जीता जागता उदाहरण है। माता मदालसा का तो उद्घोष था कि मेरी कोख में एक बार जो पुत्र आया वह यदि दुबारा किसी गर्भ में गिरता है तो यह मेरे लिये लज्जाजनक बात है। उसके चार पुत्र हुए और चारों ही ब्रह्मज्ञानी होकर अपने कल्याणकारी स्वरूप में समा गए। वह पहले राजा ऋतविज से पूछती कि आपको कैसा पुत्र चाहिए? जैसा राजा चाहते वैसे ही पुत्र की वह निर्मात्री बनी। अत: हमारी भावी माताओं पर हमें विशेष ध्यान देने की जरूरत है ताकि आने वाले समय में राष्ट्र को ध्रुव, प्रह्लाद, अभिमन्यु, लव-कुश व मीरा, अहिल्या, सावित्री तथा गार्गी जैसी सन्तति का सुख मिल सके। राष्ट्र की सम्पन्नता, वैभवता, कीर्ति आदि इससे नहीं होती कि वह राष्ट्र आर्थिक रूप से, भौतिक रूप से विपुल सम्पदा का भण्डार हो गया हो अपितु उसकी कीर्ति तो नैतिकता, चरित्रता और विद्वता से फैलती है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के कारण एक दूसरे का सहारा ढूंढ़ता है। वह सदैव अपने से सुदृढ़ और हर तरह से बलशाली व्यक्ति का सहारा लेना चाहता है। एकांकी प्राणी नहीं है अत: सहारा ढूंढ़ने से पहले अपने विवेक को जगाइये और देखिये कि मैं जिसकी शरण में जा रहा हूँ वह वास्तव में मुझे अभयदान दे सकता है कि नहीं। व्यक्ति सुखाभास में जीता है। जिजीविषा हमारी माँग है। व्यक्ति कभी भी अपने से कमजोर और भयभीत व्यक्ति की शरण में नहीं जाएगा। वह चाहेगा कि मैं ऐसे समर्थवान और निर्भीक व्यक्ति की शरण में जाऊँ, जहाँ जाने पर मैं हर तरह से निर्भय पद को प्राप्त हो जाऊँ। हर प्राणी काल से, मृत्यु से भयभीत है। कोई भी मरना नहीं चाहता। इस मरण के भय से निर्भय करवाने वाला इस संसार में यदि कोई है तो वह पूर्णकामी, नित्य ध्यानी श्रोत्रिय व ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु ही है।

सद्गुरु ही एकमात्र शरणागत वत्सल है। श्रद्धावत् होकर जो कोई ऐसे महापुरुष ही शरण में आता है उसे वह अपने समकक्ष ऊँचाइयों तक पहुँचाकर परम पद की प्राप्ति करा देता है। गुरु की कृपा से ही वह शरणागत शिष्य अभयपद को पा जाता है। परमात्मा में प्रीति ही उसे निर्भयता देती है, क्योंकि परमात्मा से बलिष्ठ और सक्षम शरणागतवत्सल अन्य कोई नहीं हो सकता। गुरुतत्व और परमात्मतत्व में कोई भेद भी नहीं है अत: गुरु के माध्यम से परमात्म तत्व में प्रीति होकर वह तत्व उसके जीवन में भी मुखरित होने लगता है।

जिस प्रकार एक शिल्पकार जब मूर्ति को आकार देता है तो वह उस पत्थर या लकड़ी के अवांछित आवरण को हटाता है। वह मूर्ति बनाता नहीं है, मूर्ति तो पहले से विद्यमान है, बस उस पर आए हुए अन्य पत्थर या लकड़ी को तरास-तरास कर वह हटा देता है तो वह मूर्ति भी सजीव सी प्रतीत होने लगती है। ऐसे ही गुरु भी हमारी मायिक वासनाओं को हटाकर निर्वासी बनाते हैं। हमारे अहंकार पर चोट करते हुए तत्वमसि आदि महावाक्यों का श्रवण कराकर ब्रह्मभावना में प्रगाढता व निष्ठा जगाकर निर्भय बना देते हैं।

लौकिक सम्बन्धों में जो प्रीति या प्रेम दिखता है वह वास्तव में हो यह आवश्यक नहीं। पति और पत्नी में जो प्रेम दिखता है उसमें दिखने और होने में अन्तर होता है। यदि होता भी है तो वासना मय प्रेम है। उसमें कहीं न कहीं कोई मांग है, कोई सौदा है। पिता और पुत्र में जो प्रेम है वह भी स्वार्थ की बेड़ियों से जकड़ा हुआ प्रेम है। जब भी स्वार्थ का तन्तु कमजोर पड़ता है, वही प्रेम द्वेष में बदल जाता है। परन्तु परमात्मा में जो प्रेम है वह निर्वासनिक है, उसमें कोई सौदाबाजी नहीं है।

भागवत में एक आख्यान आता है कि किसी नगर के राजकुमार व नगर सेठ के पुत्र में गहरी दोस्ती थी। दोनों मित्रवत् एक दूसरे को प्यार करते और सुख-दु:ख के भागीदार भी होते। समय पाकर राजकुमार राजगद्दी पर बैठा और राजा कहलाने लगा तथा सेठ की मृत्यु के उपरान्त वह सेठ का लड़का नगरसेठ कहलाने लगा। दोनों की दोस्ती बरकरार थी। सुबह-शाम जब भी अवकाश मिलता दोनों आपस में मिलते और आमोद-प्रमोद से जीवन व्यतीत होने लगा। एक दिन नगरसेठ के मुनीम ने सेठ से कहा-अपने चन्दन के व्यापार में बहुत मन्दी आ गई है, माल बहुत पड़ा है पर बिक्री न होने से मजदूरों को वेतन चुकाने में भी उधार लेना पड़ रहा है। सेठ ने अपने दिमाग का उपयोग करते हुए सोचा कि यदि इस नगर का राजा मर जाय तो उसके दाह-संस्कार में टनोंबन्ध चन्दन बिक सकता है और अपनी मन्दी का दौर समाप्त हो सकता है। जब सेठ ने राजा के प्रति ऐसे विचारों का संप्रेषण किया तो उधर राजा के मन में भी द्वेष भरे विचार आए और राजा ने सोचा कि सेठ के व्यापार की किसी उच्च अधिकारी की जाँच कराई जाय जिससे उसका दो नम्बर का धंधा उजागर होगा तो बहुत सारा पैसा टैक्स के रूप में राजकोष में आएगा।

दोनों के नकारात्मक विचारों के संप्रेषण के कारण वे सुबह-शाम एक जगह बैठते भी थे पर पहले जैसा रस नहीं रहा। दोनों उन्मुने भाव से मिलते और बहुत कम बोल पाते थे। एक दिन सेठ ने राजा से अपनी खिन्न भावना का जिक्र किया तो राजा ने भी कहा-ऐसा ही मेरे साथ भी कुछ घटित हो रहा है अत: हम दोनों को अपने गुरुदेव के पास जाकर पूछना चाहिए कि यह मित्रता धीरे-धीरे द्वेषता में क्यों बदल रही है और इसका समाधान भी वे ही बता पायेंगे। समय पाकर दोनों अपने गुरुदेव के पास गए और कहा-गुरुदेव हम दोनों बाल्यकाल से मित्र हैं आज भी मित्रवत व्यवहार है पर पहले जैसा रस नहीं रहा, आनंद और प्रसन्नता नहीं इसका कारण जानने के लिये आपके पास आए हैं। गुरुदेव त्रिकालदर्शी थे अत: उन्होंने अपने मन को अतीत में ले जाकर सेठ के मन को पढ़ना शुरू किया, इधर राजा के मन को भी जाना। तब पता लगा तो सेठ से कहा-सेठ तुमने अपने चन्दन की अधिक बिक्री के लिये राजा की मृत्यु चाही और वे ही नकारात्मक विचार जब राजा के विचारों से टकराए तो राजा ने भी तुम्हारे कारखाने पर छापा डालकर अधिक कर वसूलने की योजना बनाई। इसी से दोनों के परस्पर विरोधी विचारों के कारण दोस्ती कटुता में बदल गई।

स्वार्थ में प्रेम नहीं रहता। प्रेम तो निर्वासनिक वस्तु है। शरीर और संसार से जो प्रेम है वह वासना व कामना से भरा हुआ है। एक सौदाबाजी है परन्तु परमात्मा से जो प्रेम है वह निर्वासनिक है उसमें लेन-देन की गन्ध नहीं है। बस स्वाभाविक प्रेम है क्योंकि जीवात्मा और परमात्मा दोनों तत्वत: अभिन्न हैं। जहाँ काम, वासना, क्रोध और लोभ है वहाँ प्रेम का स्रोत कैसे फूटेगा। इसलिए सबसे पहले हमें अपने विचारों को शुद्ध करना होगा। विचारों की शुद्धता के लिये सत्संग सर्वोपरि साधन है। ***ससा सत्संग सदा सुखदाई, साधु संत सुजान समझाई। सत्संग सार समझै सो सांईं, सदा स्वच्छन्द स्वरूप समाई।।*** सत्संग नहीं मिले तो सद्साहित्य का स्वाध्याय करते रहना चाहिए। ताकि हमारे विचारों में पवित्रता आ सके। शरीर को पुष्ट और निरोग बनाए रखने के लिये हम नित प्रति इसे अन्नादि से पोषित करते रहते हैं ऐसे ही विचारों की शुद्धता के लिये नितप्रति सत्संग की आवश्यकता है। इसी से हमें परमात्मा की ओर उन्मुख होने में बल मिलेगा। विचारों की शुद्धता और पवित्रता के लिये यही सर्वोपरि उपाय है, अन्य नहीं।

✻

गतांक से आगे

प्रताप महान

– फारूक अहमद खान

दीन-ए-ईलाही – फतेहपुर सीकरी में बनाये गये ईबादतखाना में सभी धर्मावलियों/धर्मगुरुओं से अकबर सभी धर्मों के प्रवचन सुना करता था। तथा उनकी आपस में शास्त्रार्थ भी करवाया करता था। क्योंकि वह स्वयं पढा-लिखा नहीं था इसलिए वह समस्त विचार-विमर्श को याद रखने की कोशिश करता था। शेख मुबारक के द्वारा प्रेरित करने पर उसने 1582 में दीन-ए-ईलाही मजहब की घोषणा कर डाली। इस नए धर्म में शुक्रवार के दिन मांसाहार वर्जित था। तथा इस धर्म की दीक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति को अपना सिर अकबर के चरणों में झुकाना पड़ता था। और पगड़ी अकबर के चरणों में रखनी पड़ती थी। सम्राट उसे उठाकर उसके सर पर पुन: रखकर 'पष्ठ' करता था अर्थात् उसे अपना स्वरूप प्रदान करता था। इस पष्ठ पर अल्लाह-हो-अकबर खुदा रहता था। अनुयायी को अपने जीवन में श्राद्ध भोज देना होता था। इसके अतिरिक्त पूर्व की ओर सिर करके सोना शुभ माना जाता था।

अकबर द्वारा प्रचलित धर्म दीन-ए-ईलाही में सभी धर्मों का समावेश करने का असफल प्रयास किया गया था। बीरबल पहला व अन्तिम हिन्दू था जिसने दीन-ए-ईलाही को स्वीकार किया। बीरबल के अतिरिक्त अबुल फजल, अबुल फैजी तथा शेख मुबारक ने भी यह धर्म अपनाया। अबुल फजल को दीन-ए-ईलाही का प्रधान मुकर्रर किया गया था। अकबर के द्वारा दीन-ए-ईलाही धर्म को राजकीय धर्म घोषित किया गया था। अकबर की मृत्यु 1605 ई. तक यह राजकीय धर्म रहा।

इतिहासकार स्मिथ ने दीन-ए-ईलाही के बारे में लिखा है-''यह साम्राज्यवादी भावनाओं का शिशु व उसकी राजनैतिक महत्त्वाकांक्षाओं का एक धार्मिक जामा है।''

अकबर ने नया कैलेण्डर 'इलाही संवत'' भी शुरू किया था। अकबर के नौ के नौ नवरत्न भी इस धर्म में शामिल नहीं हुए। दीन-ए-ईलाही में 15 से अधिक अनुयायी शामिल नहीं हुए, अकबर के केवल चार नवरत्न ही इस धर्म में शामिल हुए।

नया धर्म दीन-ए-ईलाही की अवधारा-इस्लाम धर्म के शत प्रतिशत प्रतिकूल होने के कारण अकबर के साम्राज्य के मुल्ला, मौलवी, ईमाम तथा कट्टर मुसलमान अकबर के विरोधी हो गए थे। इस कारण अकबर को धार्मिक व मजहबी तिरस्कार का सामना करना पड़ा। क्योंकि अकबर दृढ़ शक्तिशाली सम्राट था तथा उसे राजपूतों व अन्य जाति का समर्थन प्राप्त था इसलिए इस तिरस्कार की भावना को व्यक्त करने का साहस किसी में नहीं था। परन्तु मजहबी बिन्दुओं को लेकर पैदा होने वाले विरोधाभास पर मुफ्ती तथा उलमा अकबर के विरुद्ध ''फतवा'' जारी करने में कोई देर नहीं करते थे। क्योंकि ईस्लाम अपने पैगम्बर मोहम्मद (स.अ.) को अन्तिम पैगम्बर (Last Massenger) मानता है। तथा यह अविवादित मान्यता है कि ईस्लाम मजहब मोहम्मद साहब के साथ पूर्ण हो चुका है। अब इसमें किसी प्रकार की ''जैर और जबर'' (एक मात्रा) की गुंजाइश नहीं है। इसलिए अकबर के प्रति मुसलमानों के दिलों में घृणा पनप गई थी। कई मौकों पर अकबर को मस्जिद में प्रवेश करने पर भी फतवा जारी किया गया।

''मृत अकबर की अंत्येष्टि बिना किसी उत्साह के जल्दी ही कर दी गई। दुर्ग की दीवार तोड़कर एक मार्ग बनवाया गया तथा शव चुपचाप सिकंदरा के मकबरे में दफन कर दिया गया।''

– विन्सेन्ट स्मिथ अकबर द ग्रेट पृष्ठ 236

इस प्रकार प्रमाणित ऐतिहासिक घटनाओं/तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि –

– अकबर तैमूर एवं मंगोल वंश का था एवं उसकी रगों में तुर्क एवं मंगोल खून दौड़ता था। जबकि महाराणा प्रताप का संबंध सूर्यवंशी सिसोदिया राजपूत खानदान से था जो स्वयं को भगवान राम का वंशज मानते हैं।

– अकबर निरक्षर था, पढने लिखने में उसको कोई रुचि नहीं थी। जबकि महाराणा प्रताप ने उच्च कोटि की सामयिक, गुरुकुल पद्धति से शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की थी।

– अकबर आक्रान्ता था। बाल्यकाल से ही साम्राज्यवादी एवं विस्तारवादी था। जबकि प्रताप को जनसामान्य, विशेषतया आदिवासी एवं गाडिया लुहारों की स्वामीभक्ति प्राप्त थी।

– अकबर में ''मंगोल-क्रूरता'' अपने चरम पर थी। चित्तौड़गढ़ युद्ध के बाद 12,000 निरीह और नि:सहाय आदमी-औरतों और बच्चों का कत्ले आम इस बात का प्रमाण है।

– अकबर एक धनलोलुप एवं लालची शासक था। वह जिस व्यक्ति से अप्रसन्न होता था चुपके से उसकी हत्या भी करवा दिया करता था।

अत: उपरोक्त ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर दोनों समकालीन शासक महाराणा प्रताप तथा अकबर के व्यक्तित्व का तुलनात्मक विवेचन करते हैं तो हमें निम्न गुण एवं अवगुण दिखाई देते हैं।

1. जन्म – कन्नौज युद्ध में हार कर भागते हुए हुमायूँ थार मरुस्थल की छोटी-सी जागीर अमरकोट के राजा की शरण में पहुँचा। अपनी गर्भवती पत्नी को अमरकोट के जागीरदार के संरक्षण में छोड़कर काबुल की तरफ कूच कर गया। अमरकोट के जागीरदार के संरक्षण में अकबर का जन्म हुआ, जबकि महाराणा प्रताप का जन्म राजपूताना के प्रतिष्ठित वंश में हुआ था।

2. शिक्षा – अकबर जीवनपर्यन्त साक्षर नहीं हो सका, वह अनपढ़ ही रहा, जबकि प्रतापसिंह ने प्रचलित गुरुकुल शिक्षा पद्धति के अनुसार पूर्ण रूप से शिक्षा एवं सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त किया।

3. व्यसन – अकबर सुबह सूखे मेवों के साथ अफीम (पोस्त) तथा शाम को ईरानी शराब (अर्क) पीने का आदि था।

4. रण-कौशल – अकबर की एक जरा सी भूल से चित्तौड़गढ़ युद्ध में मुगलों के दो सौ सबसे बहादुर सिपाहियों के एक क्षण में ही टुकड़े उड़ गये थे, जबकि महाराणा प्रताप ने रण-कौशल का परिचय देते हुए हल्दीघाटी का युद्ध अपनी शर्तों पर, अपने चयनित स्थान एवं दिन में लड़ा था।

5. अन्तर्दृष्टि – महाराणा प्रताप को मालिक की तरफ से अद्भुत अन्तर्दृष्टि प्राप्त थी, इसीलिए उन्होंने अपनी सेना की हरावल की कमान हकीम खाँ सूर को सौंपी और अपनी सवारी के लिये चेतक को चुना।

6. व्यक्तिगत शौर्य – अकबर स्वयं कभी भी युद्ध के मैदान में व्यक्तिगत रूप से राजपूतों की सेना से नहीं लड़ा, जबकि महाराणा प्रताप ने हल्दीघाटी तथा उसके बाद प्रत्येक युद्धभूमि में अपनी सेना का स्वयं संचालन किया। हल्दीघाटी के युद्ध में महाराणा प्रताप को पाँच घाव लगे इसके उपरान्त भी अपने दुश्मन की सेना को चीरते हुए उसके मध्य में मुगल सेनापति मानसिंह के हाथी पर चढ़ बैठे। जाते-जाते महाराणा प्रताप ने तलवार के एक ही वार में दो मुगल सिपाहियों को कवच एवं अश्व के साथ काट डाला था।

7 धार्मिक आस्था – अकबर ने एक नया मजहब दीने-इलाही चलाकर स्वयं को इस्लाम से एक तरह से खारिज ही कर दिया था, जबकि महाराणा प्रताप जीवनपर्यन्त एकलिंगजी की भक्ति में लगे रहे।

8. त्याग – महाराणा प्रताप ने मेवाड़ से दुश्मन को निकालने तक पत्तल में खाना, भूमि पर सोना एवं कुटिया में रहने की शपथ का निर्वाह किया, जबकि अकबर ने अपना पूरा जीवन विलासिता में ही जीया।

9. युगदृष्टा – महाराणा प्रताप को अपनी प्रजा और विशेषतौर पर भील समुदाय तथा गाड़िया लोहार समुदाय की स्वामीभक्ति प्राप्त थी।

महाराणा प्रताप का उदाहरण राष्ट्र में स्वाधीनता एवं स्वाभिमान का परिचायक बन गया है, जब भी स्वाधीनता और राष्ट्रभक्ति की बात होती है, महाराणा प्रताप का नाम गर्व से लिया जाता है।

जननायक : प्रताप को जन सामान्य की स्वामीभक्ति प्राप्त थी। जिसके सहारे वह दुनिया के बहुत बड़े शासक तथा हर तरह से साधन सम्पन्न सम्राट अकबर से हर कदम पर मुकाबला करता रहा। जबकि अति धार्मिक महत्त्वाकांक्षाओं के कारण अकबर के द्वारा प्रचलित दीन-ए-इलाही का केवल 14 आदमियों ने ही समर्थन किया जिनमें से 4 उसके नवरत्न थे एवं जिनमें से केवल एक हिन्दू ब्राह्मण राजा बीरबल थे, और इस

कारण उसके खिलाफ कई फतवे जारी हुए। यहाँ तक की उसे मुसलमान मानने पर भी प्रश्नचिह्न लगा दिया गया था। इस प्रकार अकबर मजहब से एक बहिष्कृत व्यक्तित्व का व्यक्ति था।

व्यक्तिगत जीवन : अकबर अपनी मृत्यु के पश्चात् लगभग 300 औरतों का हरम छोड़ गया। सवेरे के समय वह पोस्त (अफीम, सूखे मेवे तथा अन्य प्रकार की यौन वर्धक दवाईयों के साथ) खाया करता था और रात को अर्क (ईरानी अंगूरी शराब) पीने का आदी था जबकि महाराणा प्रताप शराब को छूते भी नहीं थे।

अंत्येष्टि – महाराणा प्रताप की अंत्येष्टि विधि पूर्वक की गई, जबकि अकबर का शव किले की दीवार तोड़कर चुपचाप निकाला गया व दफना दिया गया।

महाराणा प्रताप के संघर्ष का सबसे दूरगामी परिणाम ''छापामार युद्ध पद्धति'' के रूप में संसार के सामने आया एवं सैन्य प्रणाली में छापामार युद्ध पद्धति को अपनाने का प्रथम श्रेय महाराणा प्रताप को है। तत्पश्चात् यह युद्ध पद्धति निश्चित रूप से सैन्य प्रणाली का महत्त्वपूर्ण अंग बन गई।

तोपों और बंदूकों से सुसज्जित मुगल सेना तत्कालीन समय की सबसे प्रभावशाली सेना मानी जाती थी।

"Babar was the first warior to introduce the role of gun powder in battle field."

- Dr. Ishwari Prasad

पानीपत का पहला युद्ध (1526) एवं खानवा युद्ध (1527) में संख्या बल में बहुत अधिक सैनिकों वाली प्रतिरोधी सेना के विरुद्ध बहुत कम संख्यक मुगल सेना तोपों एवं बंदूकों के बल पर ही विजयी हुई थी, परन्तु हल्दीघाटी युद्ध (18 जून, 1576) एवं उसके पश्चात् मुगल सेना द्वारा किये गये छह महत्त्वपूर्ण अभियानों में अपने से पाँच गुना से अधिक सेना का महाराणा प्रताप ने छापामार युद्ध प्रणाली अपनाते हुए सफलतापूर्वक सामना किया।

भौगोलिक परिस्थिति : मेवाड़ का लगभग 300 वर्ग मील का पहाड़ी क्षेत्र चारों तरफ से मुगल साम्राज्य के सूबे अजमेर, मालवा तथा गुजरात से घिरे हुए था तथा मांडलगढ़ और चित्तौड़गढ़ पर मुगल सेना का आधिपत्य था। दस साल की अवधि में अपने राज्य का लगभग 80 प्रतिशत भाग (चित्तौड़गढ़ एवं मांडलगढ़ को छोड़कर) दोबारा जीत लिया था।

औरंगजेब की विशाल सेना के विरुद्ध शिवाजी ने भी यही छापामार युद्ध प्रणाली अपनायी ताकि वह अपने से कहीं बड़ी/विशाल एवं साधन सम्पन्न सेना का सामना कर सके। कालान्तर में इसी युद्ध प्रणाली से प्रभावित होकर हो-चिह्न-मिन्हि ने वियतनाम युद्ध में छापामार युद्ध के आधार पर अमेरिका तथा फ्रांस की संयुक्त महाशक्तिशाली सेना को पराजय स्वीकार करने के लिये बाध्य कर दिया।

महाराणा प्रताप की ख्याति का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि भूतपूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने एक बार भारत भ्रमण कार्यक्रम बनाया था (जो फलीभूत न हो सका) तो उन्होंने अपनी माता से पूछा था कि वह भारत से उनके लिए क्या चीज लेकर आए तो अब्राहम लिंकन की माता ने अभिलाषा व्यक्त की ''यदि हो सके तो वीरभूमि हल्दीघाटी की एक मुट्ठी मिट्टी लेते आना।''

अत: उपरोक्त संपूर्ण विवेचन से यह सिद्ध होता है कि महाराणा प्रताप का उद्देश्य अपनी मातृभूमि एवं स्वाभिमान की रक्षा अपने सीमित साधनों और अपेक्षाकृत बहुत कम बल संख्या के आधार पर करना था। इसके लिये उन्होंने जीवनपर्यन्त अपना वचन निभाया, जबकि अकबर का उद्देश्य मेवाड़ को पराधीन करके सिसोदिया राजपूतों का मान-मर्दन करना था। अकबर ने अपने स्वार्थसिद्धि के लिये तत्कालीन समय के शक्तिशाली साम्राज्य एवं सेना को युद्ध भूमि में झोंक दिया, परन्तु महाराणा प्रताप के जीते जी अपने लक्ष्य के निकट भी नहीं पहुँच सका।

महान् उद्देश्य के साथ आजीवन अडिग खड़ा रहने वाला प्रताप था।

महान् उद्देश्य ही महानता का मापदण्ड है।

अत: वस्तुस्थिति का वर्णन स्वयं ही एक खुला प्रश्न है जिसका प्रत्येक व्यक्ति अपनी समझ के अनुसार विश्लेषण कर सकता है कि दोनों समकालीन शासक में कौन महान् था?

गतांक से आगे

गुजरात में सोलंकी कुल का शासन

संकलन कर्ता–गिरधारीसिंह डोभाड़ा

सिद्धराज का विद्याप्रेम :

सिद्धराज केवल महान योद्धा ही नहीं था, वह विद्या प्रेमी भी था। वह राजा भोज की तरह स्वयं साहित्यकार नहीं था लेकिन उसमें विद्या प्रेम कूट-कूट कर भरा था। सिद्धराज ने मालवा जीत कर उसकी कला और साहित्य की समृद्धि को गुजरात की ओर मोड़ दी। वह पाटण नगरी को भोज की धारानगरी जैसी कला, विद्या और साहित्य समृद्ध बनाना चाहता था। सिद्धराज ने विभिन्न प्रदेशों से महान विद्वानों, पंडितों और साहित्यकारों को अपने दरबार में आश्रय देकर, दान-दक्षिणा देकर प्रोत्साहित किया। धर्म भावना से प्रेरित होकर ब्राह्मण, जैन और मुसलमानों ने सुन्दर साहित्य का सृजन किया।

सिद्धराज के समय में उत्तम कोटि के कई जैन ग्रंथों का सृजन हुआ। जैन ऋषि हेमचन्द्राचार्य सिद्धराज के दरबार में एक नर-रत्न थे। उनकी विद्याकीय प्रवृतियों ने गुजरात को महान कीर्ति दिलवाई। मालवा से वापस लौटते समय सिद्धराज धारागढ का भोज का ग्रंथ भण्डार अपने साथ लाया था। इन ग्रन्थों में से भोज व्याकरण के ग्रन्थ से वह बहुत प्रभावित हुआ और ऐसे ही एक ग्रन्थ की रचना करने के लिये हेमचन्द्राचार्य जी से प्रार्थना की। इसके लिये कश्मीर वगैराह स्थानों से व्याकरण के ग्रन्थ मंगवाकर आचार्यश्री को दिए। मुनि श्री ने 'सिद्धहेम शब्दानुशासन' नामक व्याकरण के सुन्दर ग्रन्थ की रचना की। यह ग्रन्थ पूर्ण होने पर राजा ने उसे अपनी सवारी के हाथी पर रखकर, उसे श्वेत रेशमी वस्त्र से ढककर नगर यात्रा करवाकर ग्रन्थ भण्डार में रखवाया। राजा ने इस ग्रन्थ को इतना सम्मान दिया कि हाथी पर ग्रन्थ के पीछे बैठकर स्वयं ने ग्रन्थ पर चामर (चंवर) ढोई। इस ग्रन्थ की सेंकड़ों नकल करवाकर देश-विदेश के विद्वानों को दी। मुनि हेमचन्द्राचार्य त्रिकाल ज्ञानी माने जाते थे, इसलिए उन्हें कलिकाल सर्वज्ञ कहा करते थे। उन्होंने द्वयाश्रय महाकाव्य, अभिज्ञान चिन्तामणी, अनेकार्थ संग्रह, देशीनाममाला, निघंटुकोश, काव्यानुशासन, छंदोनुशासन, त्रिसृष्टिशलाका, पुरुष चरित आदि उत्तम ग्रन्थों का सृजन किया।

सिद्धराज के दरबार में दूसरा बड़ा कवि था श्रीपाल। उसने सहस्रलिंग प्रशस्ति, वडनगर प्रशस्ति आदि अनेक प्रशस्तियों की रचना की। इसके अलावा प्रसिद्ध कवि वाग्भट, जयमंगलाचार्य, वर्धमान सूरि, सागरचन्द्र, श्रीचन्द्रसूरि, नेमीचन्द्र सूरि, हरिभद्र सूरि इत्यादि विद्वानों ने सिद्धराज से प्रोत्साहन पाकर सुन्दर साहित्य का सृजन किया। सिद्धराज स्वयं शैवधर्मी होते हुए भी उसने जैन धर्म के साहित्य और साहित्यकारों को सम्मान दिया। ब्राह्मण भी साहित्य की रचना करते थे। सिद्धराज की उपस्थिति में विविध धर्म और सम्प्रदायों के विद्वानों के बीच शास्त्रार्थ होता था, इसके लिये अनेक वाद्सभाएँ होती थी। इस समय पाटण के विद्वान षड्दर्शन एवं वेदज्ञान में अग्रस्थान पर थे। शास्त्रार्थ और साहित्य रचना के अलावा सिद्धराज ने सत्रशालाएँ, पाठशालाएँ, छात्रावास, मठ इत्यादि बनवाए। सिद्धराज के समय का पाटण पूरे भारत वर्ष में श्री और सरस्वती का संगम स्थान और दोनों की समृद्धि का केन्द्र था।

सिद्धराज की धर्म भावना :

गुजरात के सोलंकी राजा स्वयं शैव धर्मी थे। सोलंकी राज्य के आद्यस्थापक मूलराज से लेकर हर एक राजा ने कोई न कोई शिव मंदिर का निर्माण करवाया था और उनके रख रखाव के लिये जमीनें व गाँव भी दान में दिए। इन सभी राजाओं ने अन्य धर्मों और सम्प्रदायों को भी सम्मान दिया और उन्हें दान भी देते। सिद्धराज ने अन्य धर्मों और सम्प्रदायों के देव स्थानों का निर्माण भी करवाया और उनकी देखभाल का प्रबन्ध किया तथा दान दिया।

सिद्धराज ने शिव दर्शन के लिये राजधानी पाटण से प्रभास पाटण (सोमनाथ) की पदयात्रा की। साहित्य के

अनुसार सोमनाथ पहुँचकर शिवजी की पूजा की उस समय स्वयं भगवान शिव ने सिद्धराज को दर्शन दिए। सिद्धराज ने अपनी सोमनाथ यात्रा के समय यात्रा कर समाप्त कर दिया जो राज्य की आय का एक बड़ा हिस्सा था।

सिद्धराज ने जैन धर्म के प्रति भी अनुराग दिखाया। सिद्धराज सोमनाथ से गिरनार गया, वहाँ उसने नेमिनाथ का जैन मंदिर बनवाया। उसने शेत्रुंजय, जो जैनों का सबसे बड़ा धार्मिक स्थान है, उसकी पूजा के लिये बारह गाँवों का दान किया। भरुच में समलिका विहार पर स्वर्ण कलश चढाया, एकादशी जैसे पवित्र दिनों में पशुवध का निषेध करवाया। उसने मस्जिदों के जीर्णोद्धार के लिये भी दान दिया। वह अन्य धर्मों के प्रति घृणा या तिरस्कार का भाव नहीं रखता था।

सुकृत्य व लोकप्रियता :

सिद्धराज केवल महान योद्धा और विजेता ही नहीं था, वह विद्या प्रेमी, प्रजा हितैषी, स्थापत्य प्रेमी, धर्म सहिष्णु, कुशल प्रशासक, न्याय कर्ता, दृढ निश्चयी, दानी और मेधावी राजा था। गद्दी पर बैठा तब उसके सामने अनेकानेक मुश्किलें थी, उन विघ्नों को सफलतापूर्वक पार करना संभव नहीं लगता था। उसने दृढता से, माता व मंत्रियों के सहयोग से सत्ता के सूत्र हाथ में लिए। गद्दी पर बैठा तब वह किशोर था लेकिन अपने दृढ मनोबल, दृढ निर्णय, कुशाग्र बुद्धि से वह किशोर से प्रतापी, 'परम परमेश्वर, त्रिभुवनगंड, अवन्तिनाथ, बर्बरकजिष्णु' बना। वह जयदेव से सिद्धराज जयसिंह कहलाया। उसकी गुप्तचर संस्था बहुत कुशल थी। वह स्वयं भी भेष बदलकर नगर चर्या करता और सत्य का पता लगाता था। मंत्रीगण व अधिकारियों को सतत् उसका भय रहता था। उसने अपनी प्रतिभा से पाटण में अनेक नर रत्नों को आकर्षित किया। वह साधारणतया लोगों से अलिप्त रहता था और लोगों में देवरूप से पूजा जाता था। विशाल योजनाओं की रचना करने और उन्हें पूर्ण करने की उसमें अद्‌भुत शक्ति थी। वह मानता था कि लश्करी विजय, स्थापत्य की भव्यता, बौद्धिक पुनरुस्थान और न्यायिक प्रशासन इन सबके संमिश्रण से ही राजा की सत्ता स्थापित होती है। वह कुशल, प्रवीण व सजग शासक था।

सिद्धराज को व्यक्तिगत दान से अधिक संस्थाओं का निर्माण प्रिय था। सरस्वती नदी के किनारे बसाये हुए सिद्धपुर में मूलराज द्वारा प्रारम्भ किए हुए रूद्रमहालय का कार्य सिद्धराज ने पूर्ण करवाया। अल्लाउद्दीन खिलजी द्वारा ध्वस्त किए गये उस रूद्रमहालय के अवशेष आज भी सिद्धपुर में हैं जिससे उसकी भव्यता का अनुमान लगाया जा सकता है। देश-विदेश से आज भी कई यात्री उन अवशेषों को देखने के लिये आते हैं और उसकी भव्यता की कल्पना करते हैं। सिद्धराज ने सिद्धपुर में एक जैन मंदिर भी बनवाया था, जिसकी देखभाल ब्राह्मणों को सौंपी थी।

सिद्धराज द्वारा निर्मित धर्म स्थानों और प्रजा हित के कार्यों में पाटण में निर्मित 'सहस्रलिंगसर' अधिक ध्यान देने योग्य है। सहस्रलिंगसर धर्मभावना और प्रजाहित, दोनों का समन्वय है। इस सरोवर के घाट पत्थरों से पक्के बनाए हुए हैं। इसके किनारे पर एक हजार आठ छोटे-छोटे शिव मंदिर हैं, इसलिए यह सहस्रलिंग सरोवर कहलाता है। एक सो आठ देवी मंदिर और एक दशावतारी विष्णु मंदिर भी बनाया गया। सरस्वती नदी से पक्की नहर से सरोवर में पानी लाया जाता था, जो लगभग आधा कि.मी. दूर है। रात्रि में मंदिरों की दीपमालाओं के प्रतिबिम्ब सरोवर के निर्मल जल में पड़ने से सरोवर की शोभा निखर उठती। सरोवर के किनारे बनाये हुए कीर्ति स्तम्भ से वह पाटण का एक सुन्दर रमणीय स्थान बना था।

काल ने करवट बदली, सरस्वती नदी में भयंकर बाढ आई होगी, उसने अपना प्रवाह बदला होगा, जिससे सहस्रलिंग तालाब और पास में ही आई हुई राणी की बाव पर मिट्टी की परतें जम गई और सरोवर व बाव के स्थान पर मिट्टी के टीले बन गए। देखकर कोई नहीं कह सकता कि यहाँ कभी सरोवर रहा होगा। कवि श्रीपाल ने सरोवर की सुन्दर प्रशस्ति की रचना की थी, जिसके

(शेष पृष्ठ 31 पर)

मणिपुरी क्षत्रिय

– कर्नल हिम्मतसिंह पीह

मणिपुर के क्षत्रिय पाण्डू पुत्र अर्जुन के वंशज और सोमवंशी क्षत्रिय हैं।

महाभारत की कथानुसार अर्जुन ने चार विवाह रचाये। पहला विवाह स्वयंवर जीत कर द्रौपदी से किया। इस विवाह से श्रुतकर्मा का जन्म हुआ जिसको अश्वत्थामा ने मारा। दूसरा विवाह श्रीकृष्ण और बलराम की बहन सुभद्रा से किया जिससे अभिमन्यु की उत्पत्ति हुई।

अज्ञातवास के समय अर्जुन कुछ समय के लिये गंगा किनारे पर रहकर सदैव गंगा स्नान किया करता था। वहाँ नागकन्या उल्लपी ने अर्जुन को देखा तो वह अनायास ही उस पर मोहित हो गई और एक दिन स्नान करते अर्जुन को खींचकर पाताल लोक में स्थित अपने प्रासाद में ले गई और उससे विवाह करने का प्रस्ताव रखा। अर्जुन ने कहा कि आप जैसी सुन्दर कन्या को विवाह के लिये मना करना सहज नहीं है परन्तु अज्ञातवास की मर्यादा के कारण वह विवश है। नागकन्या ने तर्कसंगत बात कर उसे राजी कर विवाह रचा लिया। इस विवाह से उन्हें 'इरावन' की प्राप्ति हुई जो महाभारत के युद्ध में आठवें दिन मारा गया।

अर्जुन पाताल लोक से मणिपुर पहुँचता है और मणिपुर के राजा चित्रबहमा की सुन्दर पुत्री चित्रांगदा को देख उस पर मोहित हो जाता है और राजा से उसकी राजकुमारी का हाथ माँग लेता है। अर्जुन के अनुपम व्यक्तित्व से प्रभावित होकर राजा विवाह के प्रस्ताव को स्वीकार तो कर लेता है परन्तु शर्त रखता है कि विवाह उपरान्त उसकी पुत्री और उससे उत्पन्न संतान मणिपुर में ही रहेंगे। शर्त स्वीकार करने पर अर्जुन की चित्रांगदा से शादी होती है। चित्रांगदा ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया जो बहुभुवन के नाम से विख्यात हुआ और उसी की संतान मणिपुरी क्षत्रिय हैं।

अनादिकाल से मणिपुर में कमाल, लुआग, मोइरांग और मैती जनजातियों के लोग रहते आये हैं। इनका कभी मंगोलों से भी सम्पर्क रहा होगा। उपरोक्त वर्णित जनजातियों में मैती जनजाति मुख्य रही है जिसके अन्दर समय-समय पर अन्य जनजातियों का समावेश होता रहा है। वहाँ की प्रचलित भाषा भी मैती ही है।

समय के साथ-साथ उत्तरी भारत और बंगाल के लोग भी वहाँ बसने लगे। बाहर से आए लोगों के सम्पर्क में आने से वहाँ के मूल निवासियों के सामाजिक और धार्मिक जीवन में आमूलचूल परिवर्तन आया।

बाहरी शक्तियों, विशेषतौर पर मुगलों-के अन्याय और अत्याचार से बचने के लिये बंगाल के ब्राह्मणों ने मणिपुर की तरफ रुखसत किया और वहीं के बासिन्दे हो गये। इन्होंने अपना धर्म प्रचार प्रारम्भ किया नतीजन सन् 1720 में वहाँ के लोगों ने सनातन धर्म अपनाना प्रारम्भ कर दिया।

अंग्रेजी सरकार ने 1880 में मणिपुर में जनगणना करवाई। मेजर ट्रोटर जो उस समय वहाँ के कार्यकारी राजनीतिक प्रतिनिधि थे, ने अपनी 1882-83 की जनगणना रिपोर्ट के अन्तर्गत जातियों और जनजातियों का विवरण तालिका VIII के पैरा 272 में दिया है। उसके अनुसार मणिपुर में तब निम्न जातियों के निवासी थे :-

ब्राह्मण, गनक, क्षत्रिय, ढोली केइ, कम्यस्थ, मेहतर और लोई। उपरोक्त जातियों के अलावा राजपूत गोला, जाट और जापट जो वहाँ पाये गये उन्हें बाहरी करार दिया गया।

ऊपर वर्णित आठ जातियों की आबादी में 117103 क्षत्रिय थे और शेष सातों जातियों की जनसंख्या मात्र 13789 थी।

यहाँ के क्षत्रिय अपने को ब्राह्मण और मैती-चानु की संतान मानते थे। यह लोग जनेऊ पहनते थे, शाकाहारी थे परन्तु मछली का सेवन करते थे। कहर मैती तो केवल ब्राह्मण के हाथ का खाना खाते थे। सगौत्र विवाह और क्षत्रिय और ब्राह्मणों के बीच भी शादी-सम्बन्ध का चलन आम था।

भक्त शिरोमणि मीरा बाई

– आलेख एवं चित्रांकन ब्रजराजसिंह खरेड़ा

अपनी बात

हर प्रकार के सामाजिक कार्य में काम करने वालों को आलाचना का सामना करना पड़ता है। नाम आलोचना का दिया जाता है पर अधिकतर यह निंदा ही होती है। आलोचना और निन्दा का भेद जरा बारीक है। आलोचना तो लगभग हर महापुरुष ने, संसार के हर सद्गुरु ने की है। लेकिन निंदा नहीं। आलोचना और निंदा का भेद सूक्ष्म है। कभी-कभी निंदा आलोचना जैसी मालूम हो सकती है और कभी-कभी आलोचना निंदा जैसी मालूम हो सकती है। बहुत करीब नाता-रिश्ता है इनका। उनका रूप-रंग एक जैसा है मगर उनकी आत्मा बड़ी भिन्न है। आलोचना होती है करुणा से, निंदा होती है घृणा से। आलोचना होती है जगाने के लिये, निंदा होती है मिटाने के लिये। आलोचना का लक्ष्य होता है सत्य का आविष्कार, निंदा का लक्ष्य होता है दूसरे के अहंकार को गिराना, धूल-धूसरित करना, पैरों में दबा देना। निंदा का लक्ष्य होता है, दूसरे की आत्मा को कैसे चोट पहुँचाना, कैसे घाव करना? आलोचना का लक्ष्य होता है, सत्य को कैसे खोजें? धूल में पड़ा हीरा है, इसे कैसे धो लें, शुद्ध कर लें?

आलोचना अत्यन्त मैत्रीपूर्ण है, चाहे कितनी ही कठोर क्यों न हो, फिर भी उसमें मैत्री है और निंदा चाहे कितनी ही मधुर क्यों न हो, मीठी क्यों न हो, उसमें जहर है। शायद जहर ही शक्कर में लपेट कर दिया जा रहा है।

निंदा उठती है अहंकार भाव से-मैं तुमसे बड़ा, तुम्हें छोटा करके दिखाऊंगा। आलोचना का सम्बन्ध अहंकार से नहीं है। आलोचना का सम्बन्ध मैं-तू से नहीं है।

आलोचना इस बात का अन्वेषण है कि सत्य क्या है, सत्य कैसा है? आलोचना बहुत कठोर हो सकती है, क्योंकि कभी-कभी असत्य को काटने के लिये कृपाण का उपयोग करना पड़ता है। असत्य की चट्टानें हैं तो सत्य की हथौड़ी और छैनियाँ बनानी पड़ती हैं। चोट ऐसी जो असत्य के टुकड़े-टुकड़े कर दे। जब कोई चोर पर हमला करता है तो निंदा है पर जब चोरी पर हमला किया जाय तो आलोचना है। पापी को घृणा करना निंदा है पर पाप की घृणा करना आलोचना है।

दुनिया के अधिकतर लोग निंदा में पड़े रहते हैं, निंदा का मनोविज्ञान क्या है? मनोविज्ञान बहुत सीधा-साफ है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि मेरे अहंकार की प्रतिष्ठा हो, कि मैं सबसे बड़ा। इसको सिद्ध करना बहुत कठिन है। मैं सबसे बड़ा, यह बात सिद्ध करनी बहुत कठिन है, क्योंकि और भी सभी लोग इसी को सिद्ध करने में लगे हैं। और वे लोग एक ही बात को सिद्ध करना चाहते हैं कि मैं सबसे बड़ा। कितने लोग बड़े हो सकते हैं और वह भी सबसे बड़ा? इतना घमासान चलेगा, इसमें जीत करीब-करीब असंभव है, कौन जीत सकेगा? एक-एक आदमी अरबों आदमियों के खिलाफ लड़ेगा, हार निश्चित है। यहाँ सभी हार जाएंगे। यहाँ कोई ऊपर चढ नहीं सकता तो फिर एक सुगम उपाय खोजता है मन। मन कहता है-मैं सबसे बड़ा हूँ, यह तो सिद्ध करना कठिन है, लेकिन कोई मुझसे बड़ा नहीं है, यह सिद्ध करना आसान है।

ध्यान रहे, किसी चीज की विधायकता को सिद्ध करना सदा कठिन होता है, नकारात्मक वक्तव्य सदा आसान होता है। जैसे अगर सिद्ध करना चाहो कि ईश्वर है तो बहुत कठिन बात है। जीवन को तपश्चर्या में, अग्नि में से गुजारना होगा, तब भी कब हो पाएगी यह सिद्धि, कुछ पता नहीं- इस जन्म में, जन्मों-जन्मों में। लेकिन ईश्वर नहीं है, यह सिद्ध करना हो तो अभी हो सकता है। इसमें कुछ अड़चन नहीं है, जरा सी तर्क कुशलता चाहिए, बस। नास्तिक होना कोई बड़ी कुशलता की, बुद्धिमानी की बात नहीं है, बुद्धू से बुद्धू आदमी नास्तिक हो सकता है। नकारात्मक वक्तव्य को असिद्ध करना बहुत कठिन है। विधायक वक्तव्य को सिद्ध करना बहुत कठिन है।

निंदा का मनोविज्ञान सस्ता मनोविज्ञान है, सुगम

उपाय है। इससे व्यक्ति की प्रतिभा सिद्ध होगी और उसमें खर्च कुछ नहीं करना पड़ता। हल्दी लगे न फिटकरी रंग आवे चोखा। इसे सीखने कहीं जाने की जरूरत ही नहीं। इसके लिये सत्संग करने की आवश्यकता नहीं। हर व्यक्ति निंदा में कुशल है। लोग चारों तरफ निंदा रस लेते हैं, पता नहीं रसों की गणना करने वालों ने निंदा-रस को क्यों छोड़ दिया? और सब रस तो कभी कभार लेते हैं, निंदा-रस तो लोग रोज लेते हैं, सुबह से सांझ तक। जहाँ लगता है कि निंदा हो रही है, वहीं हर व्यक्ति रस लेता है, क्योंकि दूसरा आदमी छोटा किया जा रहा है और उसके छोटे होने से एक भीतरी प्रतीति होती है कि मैं बड़ा हूँ। अगर कोई किसी की प्रशंसा करे तो कोई सुनने को तैयार नहीं और न उसे स्वीकार करे लेकिन किसी की बुराई की जाए तो उत्सुकता वश और अधिक पूछना चाहते हैं। इस दुर्गुण से बचने के लिये ही संघ में सिखाया जाता है कि बुराई केवल अपनी देखो, दूसरे की नहीं तथा हर व्यक्ति में कुछ तो गुण हैं, उस गुण को ही देखो।

पृष्ठ 26 का शेष

गुजरात में सोलंकी कुल का शासन

आधार पर पुरातत्व विभाग ने कुछ वर्ष पूर्व मिट्टी हटवाकर सरोवर के कुछ हिस्से और बाव खोज निकाले। इन्हें देखकर इन दोनों की भव्यता और उनके निर्माताओं की स्थापत्य प्रियता की कल्पना की जा सकती है।

अहमदाबाद से करीब 20 कि.मी. दूर धोलका नगर का मलाव तालाब राजमाता मीनळ देवी ने बनवाया था। तालाब गोलाकार में बनाया जा रहा था। लेकिन उसकी सीमा में एक गणिका का मकान आ रहा था। गणिका किसी कीमत पर अपनी वह जमीन देने को तैयार नहीं थी। राजा चाहते तो बल प्रयोग से वह जमीन ले सकते थे, लेकिन ऐसा नहीं किया गया और गणिका की इतनी जगह छोड़कर तालाब बनाया गया जो पूरा गोल नहीं हो सका। तालाब को देखकर राजा और राज माता की न्याय प्रियता सिद्ध होती है। इसके अलावा भी सिद्धराज ने अनेक बाव, तालाब, कुए बनवाये। डभोई, झींझुवाड़ा, बढवाण, थान वगैरह स्थानों पर किले बनवाए, आज भी जिनके अवशेष दर्शनीय हैं।

सिद्धराज जयसिंह गुजरात का महान और सर्वश्रेष्ठ राजा हो गया। वह महान योद्धा, कुशल रणनीतिज्ञ, दृढ निश्चयी, महान पराक्रमी, महान विजेता और सिद्धि प्राप्त करने वाला वीर पुरुष तो था ही, लेकिन सर्वधर्म समभाव व सम्मान, तटस्थ न्याय नीति, परदुख भंजन के भाव के कारण वह अधिक लोकप्रिय हुआ। प्रजा उसे 'दुख भंजन विक्रम' के प्यार भरे नाम से पहचानने लगी थी।

कोई निर्दोष दंडित न हो जाए और कोई दोषी छूट न जाए, इसका वह पूरा ख्याल रखता था। वह स्वयं भेष बदलकर सत्य का पता लगाता था। खंभात नगर में पारसियों के उकसाने पर हिन्दुओं द्वारा मस्जिद को जला दिया गया। राजा ने स्वयं जाकर सत्य का पता लगाया और दोषियों को दण्डित किया। मस्जिद के जीर्णोद्धार के लिये दान दिया। सिद्धराज की शक्ति के बारे में लोग अनेक प्रकार की अटकलें लगाते थे। वह सही अर्थ में एक सच्चा क्षत्रिय व शासक और लोकप्रिय राजा बना।

सिद्धराज की संतानों में केवल एक ही पुत्री कांचन देवी थी। उसकी गद्दी का वारिस कोई पुत्र नहीं था। पुत्र न होने के कारण सिद्धराज को अपने इस विशाल साम्राज्य के उत्तराधिकारी की चिंता रहती थी। इस कारण वह कुछ जिद्दी, वहमशील हो गया था। प्रारम्भ में उसने अपने दोहिते, कांचन देवी के पुत्र को उत्तराधिकारी नियुक्त करने की इच्छा की, लेकिन अपने पूर्वजों की गद्दी दूसरे वंश के पास जाए यह उसे पसन्द नहीं आया। अपनी वंश वृद्धि के लिये उसने यात्राएँ, उपासनाएँ की, मंदिर बनवाये, दान किया लेकिन सफलता नहीं मिली और इसी यातना में इस महान राजवी की मृत्यु हो गई। उसने उनचास वर्ष राज्य किया। वि.सं. 1199, कार्तिक मास की शुक्ल पक्ष की तीज के दिन उसका स्वर्गवास हुआ। उसका शासनकाल गुजरात का स्वर्ण काल था।

(क्रमशः)

– : शिविर सूचना :–

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि श्री क्षत्रिय युवक संघ के आगामी प्रशिक्षण शिविर निम्न प्रकार से होने जा रहे हैं–

क्र.सं.	शिविर	समय	मार्ग आदि
1.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	सगरां, देचू से 3 कि.मी. दूर, जिला–जोधपुर।
2.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	बूढेश्वर महादेव भूतगाँव (सिरोही) जावाल से 4 कि.मी. दूर।
3.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	संस्कृत विद्यालय, सिवाड़ा। धोरीमन्ना–सांचोर रोड़ पर स्थित।
4.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	आशापुरा माता मंदिर, नाडोल। रानी, पाली, देसूरी, सादड़ी, बाली से सड़क मार्ग से जुड़ा हुआ। पाली–उदयपुर मेगा हाईवे पर स्थित।
5.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	करगचिया (घाटोल) बांसवाड़ा–जयपुर–नेशनल हाईवे 113 से 2 कि.मी. अन्दर।
6.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	वणवासा (डूंगरपुर) साबला विजवामाता जी रोड़ पर आसपुर।
7.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	जालेला, मातेश्वरी विद्यालय। शिव से जालेला पहुँचें।
8.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	धनवा (संत भोलाराम जी मंदिर) मिठोड़ा–सिणधरी रोड़ पर।
9.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	थोब (कीकाजी बावजी का मंदिर) बालोतरा–शेरगढ मेगा हाईवे पर स्थित।
10.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	पारासर फलसूंड पोकरण से सुबह 7 बजे से हर घण्टे बस, बाड़मेर से बस।
11.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	बीठे का गाँव रा.उ.प्रा.वि., नाचना से बीकमपुर, बीकमपुर से नोख, पोकरण फलौदी से बाप, बाप से नोख हर घण्टे बस–नोख से साधन की व्यवस्था।
12.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	बैनाथा, तहसील बीदासर (चूरू)।
13.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	सनाई–जोधपुर से धुन्धाड़ा मार्ग पर स्थित है।
14.	प्रा.प्र.शि.	21.9.2017 से 24.9.2017	बड़ला बासनी–तिंवरी से 15 कि.मी. दूर। जिला–जोधपुर।
15.	प्रा.प्र.शि.	21.9.2017 से 24.9.2017	मेलूसर, सरदारशहर व रतनगढ से रेल।

16.	प्रा.प्र.शि.	21.9.2017 से 24.9.2017	नारणावास, जागनाथ महादेव मंदिर। जालोर व बागरा से बस, नारणावास गाँव से पहले।
17.	मा.प्र.शि. (बालिका)	27.9.2017 से 3.10.2017	सिवाना-कल्लारायमलोत बोर्डिंग हाउस।
18.	प्रा.प्र.शि.	28.9.2017 से 1.10.2017	सारूण्डा-नोखा से करणू-चाडी मार्ग पर स्थित।
19.	प्रा.प्र.शि.	28.9.2017 1.10.2017	डेह-कुंजल माता मंदिर। नागोर से लाडनू रोड पर नागोर से 30 कि.मी.।
20.	प्रा.प्र.शि.	28.9.2017 से 1.10.2017	खानपुर-लाडनू से सुजानगढ मार्ग पर।
21.	प्रा.प्र.शि.	28.9.2017 से 1.10.2017	कुचामन-आयुवान निकेतन, पांडेय डिफेन्स एकेडमी के पास।
22.	प्रा.प्र.शि.	28.9.2017 से 1.10.2017	केकड़ी-जिला-अजमेर। सम्पर्क सूत्र : विजयराजसिंह जालिया-9602246116, पृथ्वीसिंह सापणन्दा - 7742666287
23.	प्रा.प्र.शि.	28.9.2017 1.10.2017	भीमाना-पिंडवाड़ा, एकलिंग नाथ महादेव मंदिर। स्वरूपगंज से आबू रोड हाईवे पर भीमाना बस स्टेण्ड उतरें।
24.	प्रा.प्र.शि.	28.9.2017 से 1.10.2017	राऊता, भोपालसिंहजी का कृषि फार्म। बागोड़ा-गुडामालानी सड़क मार्ग पर बागोड़ा से 7 कि.मी. व गुडामालानी से 20 कि.मी., हर घण्टे बस है।
25.	प्रा.प्र.शि.	28.9.2017 से 1.10.2017	महाबार-बाड़मेर। पाबूजी का मंदिर।
26.	प्रा.प्र.शि.	28.9.2017 से 1.10.2017	जयसिंहधर-शिव व हरसाणी से गडरा रोड, जहाँ से सुबह 10 बजे से सायं 5 बजे तक बस उपलब्ध है।
27.	प्रा.प्र.शि.	28.9.2017 से 1.10.2017	भैंसड़ा-पोकरण से 6,7,8,11,1.30 व 4 बजे बस है। झिंझनियाली, फतेहगढ, जैसिंधर से बस है।
28.	प्रा.प्र.शि.	28.9.2017 से 1.10.2017	सोनू-बालिका विद्यालय। रामगढ जैसलमेर मार्ग पर स्थित।
29.	प्रा.प्र.शि.	29.9.2017 से 2.10.2017	डेलासर। जोधपुर से जैसलमेर नेशनल हाईवे पर चांदना या सोढांकोर उतरें। वहाँ से साधन।
30.	बाल शिविर	30.9.2017 से 1.10.2017	तनाश्रम, शहीद पूनमसिंह कॉलोनी, जैसलमेर।
31.		30.9.2017 से 2.10.2017	गरोड़िया-सोपान फार्म हाउस, तह. साणंद। साणंद से 20 कि.मी. दूर।
32.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	30.9.2017 से 2.10.2017	काणेटी, प्राथमिक शाला, साणंद से 2 कि.मी. दूर।

33.	प्रा.प्र.शि.	30.9.2017 से 2.10.2017	कड़ा-परमहंस आश्रम, कड़ा गोडवा रोड़, मेहसाणा।
34.	प्रा.प्र.शि.	8.10.2017 से 11.10.2017	ददरेवा-जिला-चूरू।
35.	प्रा.प्र.शि.	8.10.2017 से 11.10.2017	जोधयासी, नागोर से कातर रोड़ पर 30 कि.मी. दूर।
36.	प्रा.प्र.शि.	8.10.2017 से 11.10.2017	भण्डारी-डीडवाना से भण्डारी पहुँचें।
37.	प्रा.प्र.शि.	8.10.2017 से 11.10.2017	धनोपमाता-शाहपुरा-केकड़ी रोड़ पर स्थित।
38.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	8.10.2017 से 11.10.2017	उदयपुर-मीरा मेदपाट भवन, चित्रकूट नगर।
39.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	8.10.2017 से 11.10.2017	जैसलमेर-राजपूत छात्रावास।
40.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	8.10.2017 से 11.10.2017	महरोली-जिला-सीकर।
41.	मा.प्र.शि.	8.10.2017 से 14.10.2017	बहादुरपुरा दूधवा, बाड़मेर-चोहटन सड़क मार्ग पर दूधवा से 5 कि.मी. दूर उच्च प्राथमिक विद्यालय।
42.	प्रा.प्र.शि.	9.10.2017 से 12.10.2017	गोकुल-बज्जू से सुबह 8 व दोपहर 1.30 बजे व बीकानेर से 2 बजे बस है।
43.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	9.10.2017 से 12.10.2017	जोधपुर-बी.जे.एस. कॉलोनी।
44.	प्रा.प्र.शि.	9.10.2017 से 12.10.2017	लूद्रवा-जैसलमेर से पूनमनगर मार्ग पर स्थित है।
45.	मा.प्र.शि.	9.10.2017 से 15.10.2017	ऋषि मगरी-चित्तौड़-उदयपुर वाया मावली रोड पर पाडोली माताजी उतरें, पाडोली से 2 कि.मी. दूर स्थित।
46.	मा.प्र.शि.	9.10.2017 से 15.10.2017	गुढा श्यामा-धारेश्वर महादेव मंदिर। सोजत रोड से गुढा श्यामा के लिये हर घंटे बस, वहाँ से वाहन की व्यवस्था।
47.	मा.प्र.शि.	9.10.2017 से 15.10.2017	नौसर, माल्लिनाथ जी मंदिर। सिणधरी, बालोतरा, बायतु से बसें उपलब्ध।
48.	मा.प्र.शि.	9.10.2017 से 15.10.2017	राजमथाई-पोकरण से बस है।

राजेन्द्रसिंह बोबासर

शिविर कार्यालय प्रमुख (श्री क्षत्रिय युवक संघ)